विषय सूची

१ पात्र केशरी की कथा २
२ भट्टाकलंकदेव की कथा ८
३ सनत्कुमारचक्रवर्तीकी कथा २८
४ श्रीसमंतभद्राचार्यकी कथा ३७
५ संजयन्त मुनिकी कथा ४९
६ अंजन चोरकी कथा ६८
७ अनन्तमतीकी कथा ७४
८ उद्यायन राजाकी कथा ८७
९ रेवती रानीकी कथा ९१
१० भक्त जिनेन्द्रकी कथा ९७
११ वारिषेण मुनिकी कथा १०१
१२ विष्णुकुमारमुनिकी कथा ११३
१३ वज्रकुमारकी कथा १२९
१४ नागदत्त मुनिकी कथा १४४
१५ शिवभूतिपुरोहितकी कथा १५१
१६ पवित्रहृदयवालेबालककी,, १५३
२७ राजा धनदत्तकी कथा १५६
१८ ब्रह्मदत्तकी कथा १५९
१९ महाराज श्रेणिककी कथा १६२
२० राजा पद्मरथकी कथा १६९
२१ पंचनमस्कार मंत्रकी ,, १७१
२२ यममुनिकी कथा १८२
२३ दृढ़सूर्यकी कथा १८७
१४ यमचाण्डालकी कथा १९१

दो शब्द

पाठकगण !

थोड़े समय पेस्तर मैंने पुन्याश्रव कथा कोषका सम्पादन किया था, उसमें जैन समाजने एक शिकायत की थी अर्थात् लाइन ब्लाकोंकी जगह हाफटोन चित्रोंको छापें अतएव हाफ-टोन ब्लाक बनवा कर यह आराधना कथाकोष (प्रथम भाग) जैसा कुछ मुझसे हो सका सेवामें प्रेषित कर रहा हूं ।

इसके सम्पादनमें, हमारे मित्र "स्वतन्त्र" जीने बहुत कुछ सहायता दी है अतएव उनको धन्यवाद दिये बगैर नहीं रह सकता ।

आगामी इसके दो भाग और बाकी हैं सो धीरे २ लिख रहा हूं वे शीघ्रही प्रकाशित किये जांयगे ।

इसके अतिरिक्त मैं और भी कई जैन कथा पुस्तकों को देख रहा हूं जो अप्राप्य है उनको लिखनेका प्रयत्न करूंगा ।

सम्भव है मुझसे इस पुस्तकमें भूल हुई हो । विज्ञ पाठक मुझे बालक जान क्षमा ही करेंगे ।

निवेदक:—

परमानन्द जैन

सम्पादक—"दूध बताशा"

आराधना कथा कोष

समन्त भद्राचार्य के नमस्कार का फल पृष्ठ ४८

* श्री वीतरागाय नमः *

आराधना-कथा कोष

प्रथम भाग

मंगलाचरण।

भव्य पुरुष रूपी कमलोंको सूर्य प्रफुल्लित करते हैं।
लोक अलोक प्रकाशक जो हैं, ज्ञान-रश्मिको भरते हैं॥
प्रभु नेमनाथके चरण-कमलमें, नमस्कार मैं करता हूं।
शुभ-आराधना कथा-कोषका प्रथम-भाग यह लिखता हूं॥

सरस्वती-पूजा।

"शुभ सरस्वती जिनवाणीको, सादर नमस्कार करता।
जगत-तत्वके ग्यान-प्रकाशनमें निशि-दिन तत्पर रहता॥
जिसके नाम-मात्रसे प्राणी, भव-समुद्र तर जाते हैं।
वाचक! उस सर्वज्ञ देवको, मस्तक सदा नमाते हैं॥

मुनिराज-वन्दना।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान चरित्रसे, जो पवित्र नित रहते हैं।
क्षमा, सत्य, शुचि, आर्जव-मार्दव ब्रह्मचर्य व्रत रखते हैं॥

ज्ञान-सिन्धु, उत्तम गुण-भूषित, महा तपस्वी कहलाते।
उन्हीं मुनीश्वर के चरणमें, नत मस्तक हम हो जाते॥
मूलसंघ गण बलात्कार में, प्रभाचन्द्र नामक मुनि थे।
स्वामी कुन्द-कुन्दाम्नाय में, महामुनी अति ज्ञानी थे॥
जिनकी पूजा इन्द्रादिक अरु चक्रवर्त्ति भी करते हैं।
आज उन्हींकी मूलकथा पर कथा-कोष हम लिखते हैं॥

आराधनाका अर्थ।

सम्यग्दर्शन, ज्ञान चरित-तप, भव-बन्धनको छेदत हैं।
जिनसे स्वर्ग-मोक्षको जाते नरक पशूगति भेदत हैं॥

पांचोंका अर्थ।

सम्यग्दर्शन, ज्ञान-चरित-तप ही उद्योत कहाते हैं।
अन्त-र्बाह्य-रूप उनके पालन उद्यमन सुहाते हैं।
भीषण कष्ट सहन कर उनको तर्जन, निर्वाहण कहते।
महाशास्त्र तत्वार्थ पठनमें, राग-हीन साधन लहते॥
दर्शनादि का आजीवन जो विघ्न रहित पालन करते।
हम 'स्वतंत्र' निरतरण कहेंगे; जिसकी कथा निम्न लिखते॥

पाठकोंसे।

"वाचक पढ़लो भक्ति-भावसे, आराधना-कहानी।
स्वर्ग-मोक्षका जो साधन है पढ़लो हे प्रिय! ज्ञानी॥

पात्र केसरीकी कथा।

(१)

पात्र केसरीने दर्शनका कैसा है उद्योत किया।
जिनके आगे विद्वानोंने अपना मस्तक झुका दिया॥

जो श्रद्धासे जैन-धर्मपर, निज विश्वास प्रकट करते।
यश-भाजन बन कर वे दुर्लभ, मोक्ष-धाम सुखसे लहते॥

प्रिय पाठकगण ! आचार्य पात्र केसरीजीने किस प्रकार सम्य-ग्दर्शनका उद्योत कर उसकी प्राप्तिके लिये, मार्ग सुलभ किया है उस-का वर्णन मैं करता हूं। पृथ्वी मण्डलके समस्त देशोंमें, आर्य्यावर्त एक ऐसा पवित्र एवं महान देश है जो भगवान्‌के पाँच कल्याणों-से ओत-प्रोत है। उसी देशमें मगध नामक एक प्रदेश है जहाँके समस्त जीव सुखसे अपना जीवन बिताते हैं। सच पूछिये तो मगध अपने यश; वैभव, कला तथा कीर्त्तिमें संसारके समस्त देशोंमें अपना एक खास स्थान रखता है। जिसके वैभवके आगे सभी देश अपना मस्तक झुका देते हैं। उसी वैभव सम्पन्न मगध प्रदेशान्तर्गत अहिछत्र नाम का एक नगर है। नगरकी सुन्दरता समस्त संसारके नगरोंके लिये, स्पर्धाकी चीज है। उस नगरका राजा अवनिपाल था। यह प्रजाका सौभाग्य था कि उसने अवनिपालके सदृश गुण-ग्राहक, राजनीति-निपुण तथा प्रजा रंजक राजा प्राप्त किया था। राजा अवनिपाल अपनी प्रजाके ऊपर प्रेम-पूर्वक सुशासन करता था। वह एक अच्छा शासक ही नहीं था वरन् विद्याप्रेमी भी था। उसके राजसभामें पाँच सौ विद्वान्, वेद-वेदांग ज्ञाता ब्राह्मण रहते थे जो राजाको अपनी अच्छी सलाह दिया करते थे। यद्यपि राज-सभाके ब्राह्मण प्रकाण्ड पंडित थे किन्तु उनमें जात्याभिमानकी मात्रा कूट२ कर भरी थी जिससे वे अपने सामने किसीको भी कुछ नहीं समझते थे। उनमें एक विशेषता थी कि वे जब राजसभा-में जाते थे तब वे भगवान् पार्श्वनाथकी मूर्त्तिका दर्शन कर लेते थे।

वे नियमसे संध्या-वन्दन क्रिया करते थे। एक दिन ऐसी घटना घटी कि वे संध्योपासनासे निवृत्त होकर भगवान्के दर्शनार्थ जिनालयमें पहुंचे। उसी समय वहांपर, चारित्रभूषण नामक एक मुनिराज भगवान्के आगे देवागमका पाठ कर रहे थे। मुनिको पाठ करते देखकर पात्रकेसरी नामक एक ब्राह्मणने उनसे पूछा— मुनिराज! आप जिस स्त्रोत्रका पाठ कर रहे हैं क्या उसका अर्थ जानते हैं? मुनिराजने कहा, "नहीं, मेरे लिये इसका अर्थ अज्ञात है।" अर्थ सम्बन्धी मुनिकी अनभिज्ञताकी वात सुनकर पात्रकेसरीने कहा, "साधुवर्य्य! कृपाकर इस स्त्रोत्रको एक वार फिरसे सुनाइये।" मुनिराजने पुनः स्त्रोत्र पढ़कर सुना दिया जिसे सुनकर सबके हृदयमें आनन्दकी धाराएं वहने लगीं। इधर पात्रकेसरीने मुनिराजके मुंहसे देवागमका पाठ सुनकर कण्ठस्थ कर लिया। उनकी विलक्षण बुद्धि थी। वह किसीके मुंहसे कोई वात सुनकर तुरन्त याद कर लेते थे। उनकी स्मरण शक्तिकी क्षमता थी कि उनने देवागमका सम्पूर्ण पाठ एक वार सनकर याद कर लिया। उसने पाठके अर्थपर गम्भीरता पूर्वक मनन करना प्रारम्भ किया। पाठके अर्थ-गांभीर्य्यपर विचार करते २ उनके हृदयमें यह वात पैठ गयी कि जीव-अजीव पदार्थोंके सम्बन्धमें भगवान् का कथन ही सत्य है। उनके हृदयसे दर्शन मोहनी कर्मके नाश होनेसे शान्ति उत्पन्न हो गयी थी। उन्होंने अपने घर आकर दिन भर वस्तुके स्वरूपपर मनन किया। परिणाम स्वरूप उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि जैन-धर्ममें समस्त जीव पदार्थोंके सम्बन्धमें प्रमेय माना गया है और सम्यग्ज्ञानको प्रमाण स्वरूप। ऐसा विचार

करते २ उनके हृदयमें एक बातकी आशंका उठी कि क्या कारण है कि जैन-धर्ममें अनुमान प्रमाणका लक्षण नहीं मिलता है? इस प्रकार सोचते २ उनके चित्तमें जैन धर्मके सम्बन्धमें कुछ सन्देह प्रकट होने लगा। वे घबड़ा गये, ठीक उसी समय पद्मावती देवी वहाँ प्रकट होकर कहने लगी, क्या आपके हृदयमें जैन-धर्मके विषयमें कुछ सन्देह है? यदि है तो आपका सन्देह दूर हो जायगा। आप भगवान् के पास जाकर अपना सन्देह दूर कर लीजिये। मैं आपको विश्वास देती हूं कि प्रातःकाल होते ही आपके मनका सन्देह जिन भगवान् के मन्दिरमें जानेसे अवश्य मिट जायगा।" इस प्रकार कहकर उक्त देवी जिनालयमें जाकर भगवान पार्श्वनाथके फण मण्डलपर निम्न श्लोक लिखकर अन्यत्र चली गयी।

"अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेणकिम्।
नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेणकिम्॥"

देवी पद्मावतीके ऊपर पात्रकेसरीकी श्रद्धा हो गयी। प्रातःकाल होते ही उनने जिन मन्दिरमें जाकर भगवान् पार्श्वनाथकी मूर्त्तिपर अपनी शंकाका उत्तर देखा। उनके आनन्दकी सीमा नहीं रही। जिस प्रकार सूर्यके उगते ही अन्धकारका नाश हो जाता है उसी प्रकार भगवानके सम्मुख जाकर अपने सन्देहका उत्तर लिखा हुआ देखकर पात्रकेसरीके हृदयसे जैन-धर्मके प्रति समस्त सन्देह दूर हो गया। उसी समय उसके हृदयमें इस बातका पूरा विश्वास हो गया कि जिन भगवान ही भवसागरसे पार करने वाले एकमात्र देवाधिदेव हैं। वे दोष रहित हैं। जैन-धर्मसे ही लोक-परलोकका सुख मिल सकता है। इस प्रकार उन्हें सम्यक्त्वकी प्राप्ति हो गयी जिससे उनके हृदयमें अपार आनन्द हुआ।

अब पात्रकेसरीका सम्पूर्ण समय जैन सिद्धान्तके गूढ़ तत्वोंके मननमें व्यतीत होने लगा। उनकी ऐसी हालत देखकर उनके मुख्य विद्वान सहयोगी ब्राह्मणोंने उत्सुकताके साथ पूछा, हम देख रहे हैं कि कुछ दिनोंसे आपने मीमांसा, न्याय-दर्शन तथा वेदान्तोंका अध्ययन करना एकदम छोड़ दिया है, हमारी समझमें यह बात नहीं आती कि आपने जैन-धर्मके सिद्धान्तमें ही अपना अध्ययन क्यों जारी रखा है ? उनकी जिज्ञासा भरी बात सुनकर पात्रकेसरीने गम्भीर मुद्रासे उत्तर दिया—हे भाइयो ! मैं जानता हूं कि आप वेदोंके ऊपर मिथ्या विश्वास रखकर असत्यका पालन कर रहे हैं, आपने वेदोंपर ही अन्ध-विश्वास रखकर सत्यासत्यकी विवेचना करना छोड़ दिया है किन्तु ठीक इससे विपरीत मैं जैन-धर्मके सत्य सिद्धान्तपर विश्वास रखनेके कारण, आप लोगोंसे भी सादर प्रार्थना करूंगा कि आप लोग असत्यका पथ भूलकर सत्यका मार्ग ग्रहण करें। मैं दावेके साथ कहता हूं कि संसार भरके धर्मोंमें एक जिन-धर्म ही ऐसा है जिसके सिद्धान्त सत्यकी पूर्ण मात्रासे ओत-प्रोत है। अतः क्या मैं आशा करूं कि सत्यासत्यकी समीक्षा-परीक्षाके लिये, आप लोग जैन-धर्मकी शरणमें आकर सत्यकी रक्षा करेंगे ?

पात्र केसरी द्वारा जैन-धर्म-सिद्धान्तकी प्रशंसा सुनकर, अन्य ब्राह्मणोंके हृदयमें उसके प्रति ईर्षा-डाह उत्पन्न हो गया। वे पात्र केसरीसे शास्त्रार्थ करनेके लिये उद्यत हो गये। ब्राह्मणों ने राजाके पास जा कर, पात्र केसरीसे शास्त्रार्थ करनेकी अपनी उत्कट अभिलाषा प्रकट की। राजाने ब्राह्मणोंकी अभिलाषा स्वीकृत कर ली।

पात्र केसरी उक्त ब्राह्मणोंके साथ शास्त्रार्थ करनेके लिये राज-सभामें बुलाये गये। उन्होंने समस्त ब्राह्मणोको शास्त्रार्थमें हराकर सबके सामने ही अपने अकाट्य प्रवल तर्कों द्वारा जैनधर्मकी महत्ता सिद्ध कर दी। उसी समय सम्यग्दर्शन की अखण्ड महिमा प्रकट हो गई। कुछ दिनोंके बाद उन्होंने जैन-धर्म-सिद्धान्तके पोषण में एक जिन-स्तोत्रकी रचना कर, अन्य मत-मतान्तरोंके सिद्धान्तों का पूर्ण विवेचनासे खण्डन किया। उनके विद्वता पूर्ण कार्यसे, तथा प्रकाण्ड पांडित्यसे मुग्ध हो कर राजा अवनिपाल एवं अन्य ब्राह्मणोंने कायल हो कर प्रसन्नतापूर्वक जैन-धर्म ग्रहण कर लिया। पात्र केशरीके सारगर्भित उपदेशका ऐसा प्रभाव पड़ा कि राजा तथा अन्य लोगोंने जैन सिद्धान्तको भव-सागरसे पार करने वाला तथा जैन-धर्मको स्वर्ग-मोक्षका दाता समझ पात्रकेसरीसे विनम्र शब्दोंमें कहा, "हे ब्राह्मण कुलके अनमोल रत्न ? आपने अपने गहन अन्वेषण द्वारा, जैनधर्म सिद्धान्तको सत्य रूपमें सिद्ध कर जिन-भगवानकी सच्ची उपासना की है। आप ही जिन भगवानके सदुपदेशोंके सच्चे जानकार हैं। आपकी अनन्य सेवाने हम लोगोंके सामने सेवाका ज्वलन्त आदर्श उपस्थित कर दिया है। जैनधर्मके प्रति आपकी जैसी सच्ची सेवा प्रगाढ़-भावना तथा दृढ़-विश्वास है उसे वर्णन करना मनुष्यसे परे है"। समस्त लोगोंने इस प्रकार पात्र-केसरीका यशोगान कर उनके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की। उनके पाण्डित्य तथा अनमोल गुणोंपर सब लोग मंत्र मुग्ध हो गये। उस समय लक्ष २ मुखोंसे एक ही महान् शब्दकी गूंज नभमें फैल रही थी वह थी श्री पात्रकेसरीका यश-गान। अतएव, हे पाठक वृन्द ?

आपलोग निश्चयं पूर्वक विश्वास रक्खें कि श्री पात्रकेसरी परम आदरणीय सम्यग्दर्शनका उद्योत कर राजा-प्रजा तथा विद्वानों द्वारा दुर्लभ सम्मान प्राप्तकर यशके भाजन हुए। यदि, अन्य जन श्रद्धा भक्तिके साथ, उसी मार्गका अवलम्बन करेंगे तो निश्चय ही वे इस लोक-परलोकमें सुख-साधन प्राप्त कर स्वर्ग-मोक्षाधिकारी होंगे। सच पूछिये तो मैंने (ग्रन्थकार) श्रुतसागरकी आज्ञासे ही श्रीसिंहनन्दी मुनिके सन्निकट रहकर उपरोक्त कथाकी रचना की है जिसमें सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकूं। श्री मल्लिभूषण भट्टारक, कुन्दपुष्पचन्द्रके समान ही निर्दोष, कीर्तिवान थे। वे श्री कुन्द-कुन्दाचार्यकी आम्नायमें विद्यमान थे, उन्हींके गुरु भ्राता श्रुतसाग थे जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है।

भट्टाकलंक देवकी कथा।

(२)

प्राणिमात्रके सुख-निर्माता ! सृष्टि-जगतके ईश महान्।
जिन-ईश्वरके शुभ चरणोंमें, नमस्कार करता प्रभु जान ॥
वही कथा भट्टा-कलंक की, सम्यक-ज्ञान रत्न की खान।
लिखता भक्ति भावसे भाई, पढ़लो पाठक ! वह आख्यान ॥

दो बालब्रह्मचारी।

इसी आर्यावर्त्तके मान्यखेट नामक नगरमें शुभतुङ्ग राजा राज्य करते थे। उनके मन्त्री महोदयका नाम पुरुषोत्तम था। उनकी, पद्मावती नामकी स्त्री थी। मन्त्रीके दो पुत्र थे जिन्हें अक-लंक और निकलंक नामसे पुकारा जाता था वे गुणोंके भण्डार थे।

तथा बुद्धिमत्ताके आगार। एक समय, एक छोटीसी घटनाने आगे चल कर एक बृहत् रूप धारण कर लिया। बात यह हुई कि मंत्री महोदय, अपनी स्त्री तथा दोनों लड़कोंके साथ अष्टान्हिका पर्वके शुभ अवसर पर श्री चित्रगुप्त मुनिके दर्शनार्थ गये। युगल दम्पतिने मुनिराज की वन्दना कर आठ दिनोंके लिये ब्रह्मचर्य-व्रत ग्रहण करलिया साथ ही स्वभावतः अपने दोनों लड़कोंको भी ब्रह्मचर्य-व्रतसे वचन बद्ध कर दिया। मंत्रीने स्वप्नमें भी यह ख्याल नहीं किया था कि हमारे लड़के सचमुचमें आजन्म ब्रह्मचारी हो जायेंगे। उन्होंने सहज-स्वभाववश एकप्रकार की हंसीकी थी जो आगे चल-कर सत्य सिद्ध हुई। समय बीतते देर नहीं लगती मंत्रीके दोनों पुत्र जवान हो चले।

विवाहसे इन्कारी।

तब मन्त्रीने उनके विवाहकी तैयारी की। जिस समय बाल-ब्रह्मचारी दोनों भाइयोंने देखा कि उनके विवाहका प्रबन्ध हो रहा है उसी समय उन्होंने निर्भीकता पूर्वक विनय युक्त शब्दोंमें पितासे कहा "पूज्य पिताजी हमें नहीं मालूम है कि आप क्या कर रहे हैं?" पिताने प्रिय पुत्रों की सहज सीधी बात सुनकर हँसते हुए कहा, "प्रिय पुत्र, क्या तुम्हें नहीं ज्ञात है कि यह सब धूम-धाम तुम्हारे विवाह कार्य्यके लिये की जा रही है।" चौंकते हुए पुत्रोंने कहा, "क्या हमारा विवाह होने जा रहा है? पिताजी! असम्भव है, आपने हमें आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रतकी दीक्षा दिला दी है, क्यों याद है न? पिताने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा अरे क्या सचमुचमें मैंने तुम्हें ब्रह्मचर्य-व्रत दिलाया था? हरगिज नहीं, मैंने तो हँसीमें

वैसाही कहा था।" चतुर पुत्रोंने जवाब दिया, पिताजी ! सच है आपने हंसीमें ही हमें व्रत दिलाया है किन्तु, हम तो उसे सत्य जानकर ही पालन करेंगे। आप विश्वास रक्खें, धर्मके पंथमें हँसीका गुजारा कहां।" पिताने कहा, "तुम्हारा कहना मैं मानता हूं किन्तु, उस समय हमने केवल आठ दिनोंके लिये व्रतका नियम रक्खा था, अब वह बीत गया।" पिता की बात सुनकर उन्होंने कहा, "किन्तु पिताजी, आपने या आचार्य महोदयने ही उक्त दिनोंके सम्बन्धमें हमसे स्पष्टतः एक शब्द नहीं कहा था। अतः हमारा निश्चय है कि हम वह व्रत अपने जीवन भर पालन करेंगे। आप, हमारे-विवाह करने की इच्छा छोड़ दें, इस जीवनमें हम लोग विवाह करेंगे यह असम्भव बात है।" दोनों भाइयोंने उसी समय गृह-परिवारसे अपना मन खींचकर शास्त्राध्ययन की तरफ लगा दिया। वे दोनों शास्त्रोंके गहन-अध्ययनसे, थोड़े समयमें पूर्ण पण्डित हो गये। प्रिय पाठक गण। हम जिस समय का चर्चा लिख रहे हैं, उस समय, सारे भारतवर्षमें बौद्ध मतका दौर-दौरा था, उस समय उसी की तूती बोलती थी। दोनों भाइयोंके हृदयमें बौद्ध-धर्मके विषयमें जानकारी हासिल करनेकी उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हुई। किन्तु, वहांपर उनकी मनोभिलाषा की पूर्ति होना असम्भव था।

छद्म वेषमें बौद्ध धर्मकी पोल जानी।

अतः उन्होंने महाबोधि नामक स्थानमें जाकर बौद्ध-धर्मके अध्ययन करनेकी ठानी। दोनोंने अपठित विद्यार्थीके रूपमें वहांके धर्माचार्यके पास जाकर विद्याध्ययन की प्रार्थना की किन्तु, उस

समय बौद्ध-सम्प्रदायवाले कड़ी जांच कर ही विद्यादान दिया करते थे। अतः महाबोधिके धर्माचायने दोनों भाइयोंकी कड़ी परीक्षा लेकर, अन्य विद्यार्थियोंके साथ बौद्ध-सम्प्रदायके ग्रन्थ अध्ययन करने की आज्ञा दे दी। उस समय, धर्मके सम्बन्धमें बौद्धोंने इतनी धार्मिक असहिष्णुता, कट्टरता एवम् अनुदारता धारण कर ली थी कि वे विना, जांच-पड़ताल किये सबको नहीं पढ़ाते थे। अब, दोनों भाइयोंने मूर्ख बन कर विद्यारम्भ किया। उनके हृदयमें जैन-धर्मके प्रति अटल प्रेम तो था ही किन्तु बाहरमें वे बौद्ध बने रहे। दोनों भाइयोंकी स्मर्ण शक्ति इतनी तेज थी कि अकलंकदेव तो केवल एक बार की सुनी हुई बातको याद कर लेते थे। निकलंकके सामने यदि कोई अपनी बात दो बार कहे तो वह उसे याद कर लेते थे। इस प्रकार, दोनों भाई बौद्ध-धर्मकी बात सुन २ कर कंठस्थ कर लिया करते थे। अकलंक तो संस्थ और निकलङ्क दो संस्थ को पदवीसे विभूपित हो गये एक संस्थ उसे कहते हैं जिसे एक बारकी सुनी हुई बात याद हो जाय, जो दो बार कहनेसे स्मर्ण कर ले उसे दो संस्थ कहते हैं। इस प्रकार दोनों भाइयोंने छद्म वेषमें रहते हुए बौद्ध-धर्मके विपयमें पूर्ण जानकारी हासिल कर ली। साथ ही वहांका कोई भी मालूम नहीं कर सका कि ये दोनों छद्मवेषी बने हुये विद्यार्थी हमारे धर्म-शास्त्रोंकी पोलोंका अध्ययन कर रहे हैं। किन्तु, निम्नलिखित घटनाओंके लिये खतरे की घण्टीका काम किया वह यों है—

सन्देह कैसे हुआ ?

बात यों है कि एक दिन आचार्य महोदय विद्यार्थियोंको शिक्षा

दे रहे थे, शिक्षाके विषयमें ही एक स्थानपर प्रसंगवश जैन-धर्मके सप्तभङ्गी-तत्वके अशुद्ध प्रकरण आ जानेसे बौद्ध गुरुकी समझमें नहीं आया कि वह किसप्रकार विद्यार्थियोंसे कहे। वे पढ़ाना छोड़ कर बाहर चले गये। किन्तु अकलङ्क देव बौद्ध गुरुकी कमजोरी ताड़ गये। आचार्यके बाहर जाते ही उनने चुपचाप बिना किसीसे कुछ कहे पाठ शुद्ध कर दिया। आचार्य महोदयने थोड़ी देरमें आकर शुद्ध पाठ देखा अब उनके दिमागमें सब बातें साफ-साफ आ गयीं। किन्तु, थोड़ी देरके बाद उन्होंने अपने मनमें विचार किया, "क्या बात है? किसने पाठ शुद्ध किया, यहां पर जैन-धर्मका अभ्युदय चाहनेवाला कोई छद्म वेषी विद्यार्थी गुप्त रीतिसे बौद्ध-धर्मकी हानि करनेके प्रयत्नमें लगा हुआ है नहीं तो जैन-धर्मके तत्वको कौन शुद्ध करता? अतः, ऐसे गुप्त शत्रुका शीघ्रही नाश कर देना उचित है।" ऐसा विचार कर आचार्य-महोदयने समस्त विद्यार्थियोंसे कसमें लीं? परन्तु, जान-बूझ कर ऐसा कौन मूर्ख होगा जो जान देनेके लिये तैयार हो जाय? तब, आचार्यने भगवान की जैन प्रतिमा मंगाकर सबको लांघनेके लिये कहा। आचार्य की आज्ञा होते ही दोनों भाइयोंके अतिरिक्त सब जल्दी लांघ गये। अब, अकलङ्कके सामने कठिन समस्या थी। एक तरफ व्यर्थमें हठ कर (मूर्त्ति न लांघ कर) प्राण गंवाना, दूसरी तरफ उपायसे मूर्त्ति लांघकर गुप्त रह बौद्ध-मतकी पोल जान कर जैन-धर्मकी सेवा करनेके विचारसे गुप्त रहना ही श्रेयस्कर समझा ऐसा सोचकर अकलङ्कने पतला सूत प्रतिमा पर डाल कर उसे परिग्रही समझ झट पार कर गये। उनने इतनी तेजीसे सब

कुछ काम किया जिसे किसीने नहीं देखा। इस प्रयत्नमें आचार्य असफल रहे। अब उनने तीसरी तरकीब सोची जो सफल सिद्ध हुई। उनने कांसेके वर्त्तन, विद्यार्थियोंके सोनेके पास ही रखवा दिये वहां अपना एक गुप्तचर रख छोड़ा। समस्त विद्यार्थी नींदमें खुर्राटे लेने लगे। उन्हें क्या पता था कि उनके विरुद्ध कोई गुप्त कार्यवाही हो रही है। जिस समय समस्त विद्यार्थी प्रगाढ़ निद्रामें सो रहे थे, एकाएक एक भयानक शब्द हुआ जिससे सबके सब घबड़ा कर उठ बैठे। समस्त विद्यार्थियोंने किसी भावी विपत्ति की आशंकासे भयभीत होकर अपने २ इष्टदेवका स्मर्ण करना प्रारम्भ कर दिया। आचार्यका जासूस सबकी पुकार ध्यानसे सुन रहा था वह दोनों भाइयोंके मुखसे पंच नमस्कार-मंत्रका उच्चारण सुनकर चौंक उठा। वह, दोनों भाइयोंको पकड़ बौद्ध-गुरुके पास ले जाकर कहने लगा, गुरू देव! हमारे धर्मके दुश्मन पकड़े गये! येही धूर्त हैं जिन्होंने अपने इष्टदेव जिन- भगवानका नाम लिया है अब आज्ञा दीजिये, इनके साथ कैसा बर्ताव किया जाय। बौद्ध गुरु सामने ही अपने दुश्मनको देखकर क्रोधित हो चिल्ला उठा, "प्राणदत्त! इन धूर्तोंको कारागारमें बन्द कर दो, आधी रात्रिके समय इसका वध होगा" दोनों भाई, कैदखानेमें बन्द हुए।

दोनों भाई कैदसे भागे।

दोनों भाई, कैदखानेमें मृत्युके घाट उतरनेके लिये ठूस दिये गये। निकलङ्कने गिड़गिड़ाकर अपने भाई अकलङ्कसे कहा, "भाई, देखता हूं कि हमारा सारा प्रयत्न बेकार हो रहा है, हम लोगोंने अपनी विद्याका कुछ भी उपयोग नहीं किया। हमारी समस्त विद्या

निरर्थक सिद्ध हो रही है; हमने जैन-धर्मकी सेवा भी नहीं की, और मुफ्तमें जान जा रही है।" अकलङ्क तो परिस्थितिसे घबड़ा जाने वाले मनुष्योंमेंसे नहीं थे। वे धीरताकी प्रत्यक्ष मूर्त्ति थे, उन्होंने साहस कर निकलङ्कसे कहा, "भाई, घबड़ाते क्यों हो? देखो, मेरे पास छत्री है, इसीके द्वारा हम अपने प्राणकी रक्षा कर जैन-धर्मकी सेवा कर सकेंगे। उठो, हम लोग इसके द्वारा यहाँसे भाग निकले।" बस दोनों भाई, धीरे २ वहाँसे निकल पड़े और बड़ी तेजीसे भाग चले।

शत्रुओंने पीछा किया!

उधर, बौद्ध-गुरुने आधी रात्रिका समय जान दोनों भाइयोंको कारागारसे लाकर मारनेकी आज्ञा दी। गुरुकी एक जबानपर कितने लोग कैदखानेकी तरफ चल पड़े। किन्तु उनके आश्चर्यकी सीमा न रही जब उन्होंने कारागारमें मनुष्य क्या उनकी छायातक नहीं देखी, सभी हैरान हो गये। उस समय सबकी जबानपर एक ही बात थी, पाजी भाग गये। कोई कहता कहाँ गये, किधरसे भागे दूसरा कहता अरे, देखो, कहीं वे दोनों आस-पासके स्थानोंमें छिपे होंगे। चारों ओर कोलाहल मच गया। चारों ओर लोग उन्हें पकड़नेके लिये दौड़ पड़े। बातकी बातमें जंगल, पहाड़का कोना-कोना छान डाला गया मगर वे न मिल सके। तब वे और क्रोधित होकर कहने लगे देखो, वे भागने नहीं पावे, घोड़ेपर चढ़कर उन्हें पकड़ लिया जाये। वे कहां भागकर जांयगे। हाय! मनुष्य होकर मानवता छोड़ वे दानव बन गये। उस समय उनके हृदयमें प्रतिहिंसाकी दुर्भावना काम कर रही थी। क्रूरता ताण्डव नृत्य कर रही थी।

दानवता अठखेलियाँ कर रही थी और दया सिसक-सिसककर रो रही थी। बातकी बातमें कितने अश्वारोही तेजीके साथ दोनों भाइयोंका पीछा करने लगे। उधर दोनों भाई सशंकित हृदयसे जल्दी २ भागते जा रहे थे, वे पीछे फिर कर देखते भी थे कि कहीं हमारा पीछा तो नहीं किया जा रहा है। इसी बीचमें निकलङ्कने पीछे आकाश मण्डलमें गर्दा उड़ते देखा। वह समझ गया कि निर्दई बौद्ध हमें पकड़नेके लिये हमारा पीछा कर रहे हैं।

भाइयोंमें वियोग।

एकने चौंककर अपने दूसरे भाई अकलङ्कसे कहा, "आह भाई हम लोगोंके प्रति दैव ही प्रतिकूल मालूम होते हैं—देखो, आकाशमें धूल उड़ रही है शत्रु हमारा पीछा कर रहे हैं ? भैया, हमारा उद्देश्य असफल रहा। अफसोस, हमने अपने प्रिय जैन-धर्मकी कुछ भी सेवा नहीं की ? मौत हमारा सामना कर रही है, दैव प्रतिकूल है। अब, मृत्यु निश्चित है—दुष्ट पापियोंके हाथोंसे बचना असम्भव है किन्तु एक उपाय है जिससे जैन धर्मकी कुछ सेवा हो सकेगी वह यह है -देखो, सामने तालाबमें कमलके पुष्प भरे हुए हैं। तुम कमलमें छिपकर अपनी जान बचाओ। जानते हो, किसके लिये जैन धर्मकी सेवाके लिये। तुम संस्थ हो, साथ ही विद्वान। यदि तुम बचे रहोगे तो तुम्हारे द्वारा प्रिय पवित्र जैन-धर्मका अभ्युदय होगा। मुझे प्राण देने दो। कुछ परवाह नहीं। मैं हँसते २ अपनी जान दे दूंगा, मुझे मरनेमें भी सन्तोष तथा सुख प्राप्त होगा कि मेरे भाईने जैन-धर्मका झण्डा गौरवके साथ ऊंचा फहराया है। भाई, जल्दी करो, तालाबमें जाकर छिप रहो, देर मत करो, देखो,

पापियोंकी फ़ौज नजदीक आ रही है। बस, आखिरी बिदा—भाई, मैं भी जाता हूं, तुम भी जाओ। ऐसा कहकर निकलंक तेजीके साथ चल पड़ा—उधर अकलङ्क अपने प्रिय भाईसे अन्तिम विदाई भी नहीं ले सके—कुछ क्षणतक वे जहांके तहाँ खड़े रहे उनका गला भर आया—भ्रातृ-वियोगके कारण उनका हृदय, भ्रातृ-प्रेमसे आन्दोलित हो उठा। अकलङ्कके मुंहसे यह बात निकल पड़ी. मैं अपने लिये नहीं बल्कि पवित्र जैन-धर्म सिद्धान्तके लिये जिन्दा रहूंगा। पाठकगण ! अकलङ्कके लिये कमलपत्रोंमें आश्रय लेना नाम मात्रका था। सच पूछिये तो उन्होंने जिन शासनकी शरणमें आश्रय लिया था। उधर निकलङ्क जो छोड़ कर बेतहाशा भागे जा रहे थे। पासही उन्हें कपड़ा धोता हुआ एक धोबी दिखा। धोबी निकलङ्कको भागता देख, साथ ही आकाशकी धूलि देख कर बोला, "हे भाई, तुम भागे क्यों जा रहे हो ? क्या बात है ? और आकाशमें इतनी धूल क्यों उड़ रही है ?" अकलङ्कने भागते हुए कहा, "अरे ! तुम भी भागकर अपनी जान बचाओ, पीछे शत्रुओंकी फौज तेजीके साथ आ रही है, उसे रास्तेमें जो मिलता है वह उसका खातमा कर देती है। अब, धोबीरामका डरके मारे होश गायब हो गया, वह भी कपड़े वहीं छोड़ निकलङ्कके साथ जी छोडकर भाग चला। परन्तु वे भागकर कहां जाते ? अश्वारोहियोंने बातकी बातमें दोनोंको पकड़ लिया। पापियोंने वहाँ क्रूरताकी पराकाष्ठा कर दी। वे दोनों तलवारके घाट उतार दिये गये। ठीक ही है जिस धर्मके अनुयायियोंमें दया, अहिंसाका भाव नहीं रहता, उनके पापी अनुयायी जो न दुष्कर्म करें वह थोड़ा है। जिसके पंथमें मिथ्यात्वका प्रचार है

आडम्बरका व्यापार है उसके अनुयायी यदि अन्य धर्मावलम्बियोंके साथ, क्रूरता, वर्बरता तथा जघन्य-पूर्ण बर्ताव करते हैं तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात है ? पापियोंने निर्दोष व्यक्तियोंको हत्यासे अपना मन सन्तोष करा लिया। वे हर्षके मारे फूले नहीं समाये। जब वे चले गये तब अकलङ्क सरोवरसे निकल तेजीसे एक ओर चल दिये। इस प्रकार भ्रमण करते वे कलिंग देशके रत्नसंचयपुर नामक एक नगरमें जा पहुंचे।

बौद्ध गुरु हराये गये।

उन दिनों रत्नसंचयपुरमें हिमशीतल नामक राजा राज्य करते थे। उनकी मदनसुन्दरी नामक स्त्री थी। रानी मदनसुन्दरी को जैन-धर्मपर बड़ी आस्था थी। उसने जिन भगवानका मन्दिर बनवाया था। रानी जिन भगवानको श्रद्धा-भक्तिके साथ पूजा किया करती थी। ठीक उसी समय, फाल्गुण शुक्ल अष्टमीसे रथ-यात्राका उत्सव आरम्भ हुआ था। रानीने उस महोत्सवको सफल बनानेमें बहुत द्रव्य खर्च किया था। उसी नगरमें संघ श्री नामक बौद्धोंका एक आचार्य था। वह जैन धर्मावलम्बियोंसे इर्षा रखता था। उसने महाराजके पास जाकर निवेदन किया कि आप रानी-की रथ यात्रा बन्द करा दें। महाराजने उसकी बात मान रथयात्रा बन्द करा दी। संघश्री अपनी सफलतापर फूला नहीं समाया, उस का हौसला बढ़ गया। उसने देखा कि यहांपर जैनियोंमें कोई विद्वान नहीं है, शास्त्रार्थ करनेकी घोषणा प्रकाशित की। इधर रानी रथयात्राके ऊपर राजाकी निषेधात्मक आज्ञा सुन बहुत दुखित

हुई। महाराजने रानीसे कहा, "जबतक, जैन धर्मका अनुयायी कोई विद्वान बौद्ध गुरुको शास्त्रार्थमें हराकर अपने उत्कृष्ट धर्मका झण्डा नहीं उड़ायेगा तवतक तुम्हारा महोत्सवका होना असम्भव है। रानीने दुःखित हृदयसे जिनालयमें जाकर जैन मुनियोंको श्रद्धासे नमस्कार कर निवेदन किया, "मुनिराज! आज हमारा महोत्सव रुका हुआ है। बौद्ध गुरुने शास्त्रार्थकी घोषणा कर मेरा महोत्सव रुकवा दिया है। मुनिराज, आज ही धर्म परीक्षाका दिन है। क्या कोई जैन सम्प्रदायमें ऐसा प्रसिद्ध विद्वान है जो धर्म गुरु को शास्त्रार्थमें पराजित कर जैन धर्मको श्रेष्टता सिद्ध कर दे? प्रभो! एक पन्थ दो काजके अनुसार मेरी मनोभिलाषाकी पूर्त्ति हो जायगी साथ हो पवित्र जैन धर्मकी उत्कृष्टता भी सावित हो जायगी।" रानीकी विनम्र प्रार्थना सुनकर मुनिने कहा, "यहांपर कोई ऐसा विद्वान नहीं है जो बौद्ध गुरुको शास्त्रार्थमें जीत सके। हां मान्यखेट नगरके विद्वान यदि आवें तो आपकी मनोकामना सिद्ध हो सकती है। मुनिराजका इस प्रकार उत्तर सुनकर रानीका हृदय विषादसे खिन्न हो गया। उसने ओजपूर्ण शब्दोंमें कहा, मुनिराज! भला आपके मुंहसे ऐसी निराशायुक्त बातें? आह, वलवान सामने गर्जन-तर्जन कर रहा है और आप कहते हैं कि उससे लड़ने वाला तो यहां नहीं वहां है। कितने दुःखकी बात है कि आप सदृश मुनिराजके रहते हुए जैन धर्मका इस प्रकार अपमान हो। इससे तो यही ज्ञात हो रहा है कि आप हमारे पवित्र जैन-धर्मसे प्रतिकूल जा रहे हैं? हाय, जब मेरा प्रिय पवित्र जैनधर्मका अस्तित्व ही नहीं रहेगा तव मैं इस संसारमें जिन्दा रहकर क्या करूंगी?

इस प्रकार अपने मनमें अत्यन्त दुखित होकर रानी मदन सुन्दरीने जिन मन्दिरमें जाकर अपने मनमें दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली कि जब तक यह बौद्ध गुरू हटाया नहीं जायगा और मेरा रथोत्सव धूम-धामसे न निकलेगा तब तक मैं अन्न ग्रहण नहीं करूंगी ? यह कैसे हो सकता है कि अपनी आँखोंके सामने ही जैन-धर्मका पतन देखूं, मैं उसकी दुर्दशा देखनेके स्थानपर अपना बलिदान कर दूंगी मगर अपने पवित्र धर्मकी दुर्दशा नहीं देख सकती। वह ऐसा निश्चय कर निराहार रहकर पंच नमस्कार मंत्रका पाठ करने लगी। जिस प्रकार सुमेरु पहाड़ अपनी निश्चल चूलिकाके लिये सुविख्यात है उसी प्रकार रानी मदनसुन्दरी अखण्ड ध्यानस्थ अवस्थामें सुन्दर दिखाई देने लगी। जो जन निश्चल हो श्रद्धा-भक्तिसे, भगवानकी आराधना किया करते हैं उनका मनोरथ अवश्य ही सफल होता है, तब रानीकी मनोकामना क्यों नहीं पूरी होगी ? उनके निष्कपट ध्यानसे प्रसन्न होकर प्रभावती देवीका आसन कांप उठा। आधी रात्रिके समय देवी, रानीके पास आकर कहने लगी—रानी, जब तुम्हारे हृदयमें भगवानके चरण रूपी कमलका निवास है तब तुम चिन्तित क्यों हो, मैं निश्चय पूर्वक कहती हूं कि तुम्हारी मनोकामना अवश्य सफल होगी। कल सुबह होते २ भगवान अकलंकदेव आयेंगे, वे बड़े भारी उद्भट विद्वान हैं, वे बौद्ध गुरूको शास्त्रार्थमें हराकर तुम्हारा रथोत्सव निर्विघ्नता पूर्वक समाप्त करायेंगे। देवी इस प्रकार कहकर चली गई। उधर रानी मदनसुन्दरीकी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं था। प्रसन्नतामें ही रात्रि बीत गई, सुबह होते ही रानीने भक्ति भावसे भगवानकी पूजा की। इसके बाद उसने अपने

कई नौकर अकलंकदेवका पता लगानेके लिये भेजे। चारों दिशाओंमें सेवक अकलंकदेवको ढूंढ़नेके लिये चले। जो सेवक पूर्व दिशाकी ओर गया था उसने अशोक वृक्षके नीचे एक महात्मा को बैठे हुए देखा। महात्माके पास शिष्योंकी मंडली थी। सेवकने महात्माजीका परिचय पूंछकर रानीके पास जाकर सूचना दी। भगवानके आगमनका सुसम्वाद सुनकर, रानीके हर्षका पारा-वार नहीं रहा, उसने भोजनकी सामग्री लेकर भगवान अकलंकदेवके पास प्रस्थान किया। रानी उनके पास जाकर नमस्कार कर अत्यंत प्रसन्न हुई। प्रिय पाठक ! जिस प्रकार सूरजको देखकर कमलिनी प्रसन्न होती है (विकसती है) जिस प्रकार मुनियोंके तत्व-ज्ञान देखकर बुद्धि प्रसन्न होती है, उसी प्रकार भगवान अकलंकदेवके शुभ दर्शनसे रानी मदनसुन्दरी अत्यन्त प्रसन्न हुई। इसके बाद रानीने बड़ी भक्तिसे उनकी पूजा-अर्चना की। तत्पश्चात नमस्कार कर हाथ जोड़ बैठ गयी। रानीके भक्ति-भावसे प्रसन्न होकर महात्मा अकलंकदेवने उसे शुभाशीर्वाद देकर कहा, "देवी, कहो, कुशल तो है न ? संघकी दशा अच्छी है न।" भगवान अकलंकदेवकी विनम्र वाणी सुनकर रानी की आँखोंसे आँसुओंकी धारा बरसने लगी, उसका गला रुंध गया। उसने लड़खड़ाती हुई जबानमें कहा, "देव ! संघके विषयमें क्या कहूं, आज उसकी बड़ी दुर्दशा हो रही है, जिसे देखकर मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। ऐसा कहकर रानीने बौद्ध-गुरु-संघश्रीके काले कारनामे कह सुनाये। रानीके मुंहसे जैन-धर्मके अपमानकी बात सुनकर श्री अकलङ्क क्रोधित हो उठे। उन्होंने उत्तेजित होकर कहा,—"देवी, मैं देखूंगा कि संघ श्री

कितनी विद्वता रखता है। तुम सच जानो उसका सारा घमण्ड चूर हो जायगा ? उसमें कितनी ताकत है कि वह मेरे सामने शास्त्रार्थमें ठहर सके। मैं निश्चय पूर्वक कहता हूं कि यदि बुद्ध स्वयं आकर मुझसे शास्त्रार्थ करें तो मैं उसे भी पराजित कर सकता हूं, यह धर्मश्री किस खेतकी मूली है, देवी, तुम निश्चिन्त रहो। इस प्रकार रानीको सान्त्वना देकर श्री अकलङ्कने बौद्ध गुरु के पास शास्त्रार्थ करनेका आवाहन स्वीकार का पत्र भेजा। इसके बाद वे बड़ी धूम-धामसे जिनालयमें गये। इधर जब संघश्रीने श्री अकलङ्क देवका शास्त्रार्थ सम्बन्धी पत्र पढ़ा तब उसके चेहरेपर हवाइयां उड़ने लगीं। पत्रकी लेखन-शैली पढ़कर वह समझ गया कि श्री अकलङ्क देव किस कोटिके विद्वान हैं। किन्तु उसके लिये अब कोई चारा नहीं था, लाचार होकर वह शास्त्रार्थ करनेके लिये उद्यत हो गया। राजा हिमशीतलने श्री अकलङ्कदेवके आगमन-का सम्वाद सुनकर उन्हें आदरके साथ राज सभामें बुलाकर, संघ-श्रीके साथ शास्त्रार्थ करनेकी व्यवस्था की। संघश्री भी शास्त्रार्थ करनेके लिये राज सभामें आया। प्रथम दिन श्री अकलङ्कदेवके प्रश्नोत्तरने संघश्रीके सामने कठिन समस्या उपस्थित कर दी। वह समझ गया कि इनके साथ शास्त्रार्थमें मेरा ठहर सकना अस-म्भव है। किन्तु वह बहाना ढूढ़ने लगा। उसने थोड़ी देरके बाद महाराजसे निवेदन किया, "महाराज, यह कोई साधारण वाद-विवाद नहीं है, धार्मिक विषयके ऊपर शास्त्रार्थ है। मेरी इच्छा है कि शास्त्रार्थ नियमित रूपसे चले, साथ ही जबतक निरन्तर चलता रहे; जबतक कोई पक्ष निरुत्तर होकर बैठ न जाय। महाराजने श्री

अकलङ्कदेवसे सलाह लेकर उस दिनकी शास्त्रार्थ सभा बन्द कर दी। उस दिन तो किसी प्रकार संघश्रीकी इज्जत बच गई। दूसरे दिनके लिये सभा विसर्जित हो गई। इधर संघश्री अपने संघमें आकर बड़ा चिन्तित हुआ, उसने उसी रात्रिमें अपने कई शिष्य, बौद्ध-विद्वानोंको बुलानेके लिये भेजे। इसके बाद वह अपनी इष्ट देवीकी आराधना करने लगा। उसको देवी आकर कहने लगी, "संघश्री तुमने किसलिये मुझे आवाहन किया है। संघश्रीने बेचैनोसे हाथ जोड़कर कहा, "देवी, आज बड़ी विकट समस्या है ! बौद्ध धर्मपर संकटके घन-घोर बादल घिर आये हैं। अकलङ्क बड़ा भारी विद्वान है, इस समय उसके साथ शास्त्रार्थ करना कठिन है। देवी, तू मेरे नामपर उससे शास्त्रार्थ कर, बौद्ध-धर्मकी मर्यादाकी रक्षा करो, बड़ा नाजुक समय है। देवीने कहा, 'संघश्री, मैं अकलङ्कके साथ शास्त्रार्थ करूंगी, किन्तु आमने-सामने नहीं। मैं परदेमें रहकर करूंगी।" इस प्रकार कहकर देवी तो चली गई। अब संघश्री अत्यन्त प्रसन्न हुआ। दूसरे दिन, वह अपनी नित्य क्रियासे निवृत्त होकर राजसभामें जा पहुंचा। उसने महाराजसे सादर निवेदन किया, "महाराज! मैं परदेके भीतरसे शास्त्रार्थ करूंगा ! आप, स्वीकार करें। यदि इस समय मुझसे इसका कारण पूछा जायगा तो मैं प्रार्थना करूंगा कि शास्त्रार्थके अन्तमें इसका कारण बता दिया जायगा।" महाराजने संघश्रीकी बात स्वीकृत कर ली, उन्हें क्या पता था कि दालमें कुछ काला है। महाराजने संघश्रीके कथनानुसार परदेका प्रबन्ध करा दिया। वह परदेके भीतर गया, वहां उसने बौद्ध भगवानकी पूजा की। कुछ

देरके बाद उसने एक घड़े में देवीका आवाहन किया। जो लोग छल-कपटसे अपनी धाक जमाना चाहते हैं उनको कलई खुल जाती है। जैसे किसीने कहा है:—

"फेर न होइ हैं कपटसे जो कीजे व्यापार।
जैसे हांडो काठकी चढ़े न दूजी बार।

इधर संघश्रीने घड़ेमें अपनी इष्ट देवीका आवाहन किया इधर उसकी देवी अपनी समग्र शक्तिके साथ घड़ेमें उपस्थित होकर श्री अकलङ्क देवसे शास्त्रार्थ करने लगी। दोनों तरफसे खण्डन-मण्डन चलने लगा। देवीके प्रतिपादित विषयको श्री अकलङ्क देव अपने पूर्ण पांडित्यसे खण्डन करने लगे। वे अत्यन्त विद्वतासे परम पवित्र अनेकान्त-स्याद्वाद मतके पक्षका समर्थन करते थे। इस प्रकार दोनों पक्षमें खण्डन-मण्डन होते २ छः महीने बीत चले। तब श्री अकलङ्क देवने अपने मनमें विचार किया कि संघ श्रीके समान साधारण व्यक्ति छः महीनेतक कैसे शास्त्रार्थमें ठहरा हुआ है। इस प्रकार वे चिन्ता-सागरमें डूबने उतराने लगे। एक दिन उन्हें चिन्तित देख जिन-शासनकी इष्ट देवी चक्रेश्वरी उनके पास आकर कहने लगी, "देव! आप चिन्तित क्यों हो रहे हैं। मनुष्य-में भला इतनी ताकत कहां जो आपके समकक्ष शास्त्रार्थमें ठहर सके। आप क्या समझते हैं कि आपके साथ संघश्री शास्त्रार्थ कर रहा है? नहीं, प्रभो! उसकी अधिष्ठात्री देवी छः महीनेसे आप-के साथ वाद-विवाद कर रही है। संघश्रीने आराधना कर देवीको शास्त्रार्थ करनेके लिये आवाहन किया है। उस देवीका नाम तारा है। आप निश्चिन्त रहें। हां, कलके शास्त्रार्थमें आप एक कार्य

कीजिये जिससे देवी निरुत्तर होकर चली जायगी। जब देवी अपने पक्षका प्रश्न करे तब आप उससे अपने प्रश्नको दुबारा कहने के लिये कहियेगा, फल स्वरूप देवी अपना प्रश्न दूसरी वार नहीं कहेगी और शास्त्रार्थका सहजमें ही अन्त हो जायगा। इस प्रकार श्री अकलङ्क देवको सजग कर देवी चली गई। अब, श्री अकलङ्क देवकी चिन्ता दूर हुई। दूसरे दिन, सुबह होते ही श्री अकलङ्क देव ने स्नानकर जिन मन्दिरमें जाकर भगवानको आराधना की। इसके वाद उन्होंने राज सभामें जाकर महाराजसे कहा—महाराज आज मैं चाहता हूं कि शास्त्रार्थका अन्त हो जाय। महाराज; इतने दिनोंतक शास्त्रार्थ करनेका यह मतलब नहीं था कि मैं संघ श्रीको शास्त्रार्थमें हरानेमें असमर्थ रहा वरन् इतने दिनोंतक मैंने जैन-धर्मके सिद्धान्तका महत्व प्रकट किया है। किन्तु, आज मैं निश्चय पूर्वक कहता हूं कि शास्त्रार्थका अन्त कर ही भोजन ग्रहण करूंगा। इस प्रकार महाराजसे निवेदन कर श्री अकलङ्क देव परदे की तरफ अपना मुँह कर कहने लगे,—क्या जैन धर्मके विषयमें कुछ कहना वाकी है या मैं शास्त्रार्थका अन्त करूं ? श्री अकलङ्क देवके पूछते ही परदेके भीतरसे देवी अपने पक्षके समर्थनमें अपना वक्तव्य देकर चुप हो गयी। कुछ क्षणके वाद श्री अकलङ्क देवने पूछा,—"आप कृपाकर अपना प्रश्न फिरसे कहिये, मैंने आपका प्रश्न नहीं सुना।" वस, देवीकी बोलती बन्द हो गयी। कारण यह है कि देवता एक वार ही बोलते हैं दूसरी वार नहीं बोलते। इस प्रकार श्री अकलङ्क देवका नया प्रश्न सुनकर देवी किंकर्तव्य, विमूढ़ होकर बिना कुछ उत्तर दिये ही वहांसे रफफू-चक्कर हो गई।

जिस प्रकार भास्करके उदय होते ही अन्धकार भाग जाता है उसी प्रकार उस देवीकी दशा हुई। जब परदेके भीतरसे श्रीअकलङ्क देव के कथनानुसार किसीने उत्तर नहीं दिया तब उन्होंने परदेके भीतर घुसकर घड़ा फोड़ कर संघ श्रीका मान-मर्दन कर दिया। संघ श्री किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गया। उसकी पोल खुल गई। इतनेमें श्री अकलङ्कदेवने जैन-धर्मकी विजय पताका फहरा कर अपूर्व चमत्कार दिखलाया। समस्त उपस्थित जन समुदाय जैन-धर्मकी विजयपर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। मदनसुन्दरीके हर्षका ठिकाना नहीं था, उसी समय अकलङ्क देवने कहा,—"सज्जनो! आप लोगोंने बौद्ध गुरुकी चाल देखी। आप विश्वास रक्खे कि मैं प्रथम दिन ही संघ श्र.को शास्त्रार्थमें विचलित कर देता, परन्तु छह महीनेतक देवीसे लगातार शास्त्रार्थ कर जैन-धर्मका माहात्म्य तथा सम्यज्ञानके प्रभाव प्रदर्शित करनेके लिये ही किया था। अब, आप लोग समझ गये होंगे कि किसका धर्म सत्य एवं उत्कृष्ट है।

विजय।

राज-द्वार में बौद्ध गुरुको कैसे नीचे दिखलाया।
किन्तु, आप निश्चय जानें नहिं द्वेप भाव निज प्रकटाया!!
नास्तिक जनके महा पतनपर मुझे दया जब हो आई।
क्या करता, लाचार हुआ, मैंने निज-महिमा प्रकटाई॥

पाठकगण, तभीसे बौद्ध-धर्म, सर्व साधारणकी नजरोंसे गिर गया। क्या राजा, क्या प्रजा सभी उससे घृणा करने लगे। नतीजा यह हुआ कि आज इस भारतवर्षसे बौद्ध-धर्मका जड़ ही नाश हो

गयी। तभीसे इस सम्प्रदायके लोग विदेशमें जाकर अपना अस्तित्व बचा पाये। उधर महाराज हिमशीतलकी श्रद्धा जैन-धर्म पर जम गई। उन्होंने प्रसन्नतासे जैन-धर्म स्वीकार कर लिया। उनकी (महाराज) देखा-देखी अधिकांश प्रजा, जैन धर्मकी शरण में चली गई। सब लोगोंने श्री अकलङ्क देवकी विद्वतासे चमत्कृत होकर उनका सम्मान किया। उस समय चारों ओर उनकी प्रशंसा होने लगी। इसमें तनिक भी सन्देहकी गुंजाइश नहीं है कि पवित्र सम्यग्ज्ञान अपना प्रभाव न दिखावे। जिन भगवान्के महत्वसे कौन इन्कार कर सकता है जिसके द्वारा सुख समृद्धिकी प्राप्ति होती है।

महारानीकी इच्छा पूर्ण हुई।

जब श्री अकलङ्क देवके प्रभावसे जैन धर्मकी व्यापकता फैल गई तब महारानी मदनसुन्दरीने दूने उत्साहके साथ रथयात्राकी सवारी निकाली। रथ, इस प्रकार सजाया गया जिसका क्या वर्णन किया जाय? उसमें बहुमूल्य वस्त्र लगाया गया था। उसमें घण्टियोंकी टन-टनकी आवाज सुनाई देती थी। बीचमें बड़ा घण्टा टंगा था। रथके चारों ओर मणि-मुक्ताओंसे झालर लटककर शोभा बढ़ा रही थी। रथके बीचमें स्वर्ण सिंहासनपर, जिसमें रत्नोंकी राशि लगी थी; भगवानकी भव्य मूर्ति विराजमान थी। जिसके ऊपर छत्र, चंवर, भामण्डल इत्यादि लग रहे थे। इस प्रकार भगवानका दिव्य रथ धीरे २ आगे चला जाता था, पीछेसे उत्तम पुरुष भगवानका जयजयकार बोलते जाते थे, वे भगवानके सिंहासनके सुगन्धित फूलोंकी वर्षा करते थे, जिसकी सुगन्ध चारों ओर

फैल रही थी। रथके पीछे २ चारणगण भगवानका यशोगान गाते थे। गृहदेवियां मंगल गीत गाती थीं। अनेक प्रकारके बाजे बजनेसे, रथोत्सव महत्त्वपूर्ण बन रहा था। नाचने वाली स्त्रियां अपने सुनृत्य से उसकी शोभा द्विगुणित कर रही थीं। इस प्रकार रथका उत्सव ऐसा सर्व व्यापक बन गया था जिससे ज्ञात होता था कि पुण्य स्वरूप रत्न प्रदान करने वाला कोई अन्य रोहण पहाड़ ही हो। उस समय वह रथ चलने वाला कल्पवृक्ष ही बन रहा था, कारण उसके पीछे दानी, रत्न, वस्त्रादिका दान मुक्त हस्त होकर देते थे। पाठकगण! यह रथ महोत्सवका यत्किंचित वर्णन है, पूरा वर्णन करना असम्भव है। आप इतनेसे ही अनुमान कर सकते हैं कि जब अन्य धर्मावलम्बी जनने महान रथोत्सव देखकर सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया, तब उनके महत्वका क्या वर्णन किया जाय? महारानी मदनसुन्दरीने रथोत्सव इतना सज-धजकर निकाला था जिसे देखकर यही ज्ञात होता था कि देवीका यश प्रत्यक्ष मूर्त्तिमान होकर रथोत्सवके रूपमें सर्वव्यापी बन गया हो। वह रथ सर्वश्रेष्ठ पुरुषोंके हृदयमें नित-प्रति सुख देने वाला था। हम आज भी श्रद्धा-भक्तिके साथ उस परम पवित्र रथकी आराधना करते हैं, उसमें अपना सद्भाव रखते हैं। हम प्रार्थना करते हैं कि वह सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति करावे। पाठकगण, श्री अकलङ्क देवने सम्यग्ज्ञानकी प्रभावना, उसके महत्वसे सर्व साधारण जनोंके हृदयमें प्रभावित की। उसी तरह अन्य श्रेष्ठ जन परम पावन जिन धर्मके अभ्युदयमें अपना तन, मन, धन, समर्पित कर यशके भाजन बनेंगे। आशा है, जैन धर्मके प्रति उनका जो कर्त्तव्य धर्म है उसे सम्यक् प्रकारेण पालन कर

अपने सच्चे कर्त्तव्यका पालन करेंगे। हम जिन भगवानसे प्रार्थना करते हैं कि आपकी समग्र भूमण्डलमें जय हो। हे भगवन्! इन्द्र धरणेन्द्र तक आपकी वन्दना करते हैं। आपका ज्ञान रूपी चिराग सारे संसारको सुख-स्मृद्धिका प्रदाता है। अतः श्री प्रभाचन्द्र जो ज्ञान, गुण-रत्नके आगर हैं हमारा सर्वदा कल्याण करें, यही विनम्र प्रार्थना है।

सनत्कुमार चक्रवर्त्तीकी कथा।

(३)

स्वर्ग, मोक्ष-सुख देने वाले अर्हतोंका वन्दन कर।
साधु, सिद्ध, आचार्य-चरणमें, वार वार निज शिरको धर॥
सनत्कुमार चक्रवर्त्तीकी आगे लिखी कहानी है।
पाठक! जिनका वर्णन जगमें, अतिविचित्र लासानी है॥

यश-वर्णन।

इसी भारतवर्षमें, वीतशोक नामक एक नगरमें महाराज अनन्त-वीर्य राज्य करते थे। उनकी सीता नामक रानी थी। महाराजके पुत्रका नाम सनत्कुमार था वे इतने प्रतापी थे कि उन्होंने समस्त भूमण्डल अपने आधीन कर चक्रवर्त्तीका पद ग्रहण कर लिया था। सम्यग्दृष्टियोंमें उनकी खास गणना थी। उनके ऐश्वर्यका क्या वर्णन किया जाय। चक्रवर्त्ती सनत्कुमारके यहां नवनिधियां, चौदह रत्न, चौरासी लाख हाथी तथा उतने ही रथ थे। घोड़ोंकी

संख्या १८ करोड़ थी। चौरासी करोड़ योद्धा थे। उनके राज्यके अन्तर्गत छानवे करोड़ गांव थे जो धन-धान्यसे परिपूर्ण थे। उनके राज महलमें छानवे हजार अनुपम सुन्दरियां थीं। चक्रवर्त्तीके आधीन वत्तीस हजार ऐश्वर्य-सम्पन्न प्रतापी राजा राज्य शासन करते थे। वे सुन्दरतामें अपना सानी नहीं रखते थे। भाग्यवान् ऐसे थे कि देव विद्याधर उनकी सेवा करते थे। श्री सनत्कुमार पवित्र जैन धर्मपर अटल श्रद्धा भाव रखते थे। वे नियमानुसार प्रति दिन अपना दैनिक धर्म-कार्य सम्पन्न किया करते थे। इस प्रकार चक्रवर्त्ती सनत्कुमार प्रजाके ऊपर प्रेमसे शासन कर अपना समय सुखसे विताते थे।

एक समयकी वात है कि सौधर्म स्वर्गके इन्द्र अपनी सभामें मनुष्योंकी रूपकी प्रशंसा कर रहे थे, उनके आस-पास अनेक देव विद्यमान थे। उनमेंसे एक देवने हँसीमें पूछा, "प्रभो, आपने जिस मनुष्यके रूपकी प्रशंसा की है, क्या उस तरहका कोई मनुष्य मिल सकता है या आपने प्रशंसा भर की है।"

चक्रवर्त्तीके पास देव आये।

देवकी आश्चर्ययुक्त वात सुनकर देवेन्द्रने कहा, "मैं मनुष्योंके केवल रूपकी ही प्रशंसा नहीं करता, उसका प्रमाण सुनो। भारत-वर्षमें श्री सनत्कुमार नामक एक चक्रवर्त्ती सम्राट हैं जो अपने अतुलनीय रूप-सौन्दर्यके लिये प्रसिद्ध हैं। उनके रूपके सामने मनुष्य क्या देवतक अपना सिर झुका लेते हैं।" देवेन्द्रकी प्रशंस भरी वात सुन मणिमाल और रत्नचूल नामक दो देव चक्रवर्त्तीका

रूप देखनेके लिये अपना गुप्त भेष धरकर आर्य्यावर्तमें पहुंच गये। उस समय सम्राट सनत्कुमार स्नान कर रहे थे। दोनों देव उनका रूप-सौन्दर्य देखकर आश्चर्य चकित हो गये। वे आपसमें कहने लगे कि भाई ठीक है इनके रूपकी जैसी प्रशंसा सुनी थी उससे अधिक देख रहे हैं। अहा, ये कितने सुन्दर हैं, जिसके लिये देव-तक तरसते हैं इस प्रकार कहकर दोनों देवोंने अपना असली रूप प्रकटकर सम्राटके पहरेदारसे निवेदन किया कि तुम सम्राटसे जा-कर कहो कि आपके रूप-सौन्दर्यको देखनेके लिये स्वर्गसे दो देव आये हैं। पहरेदारने श्री सनत्कुमारसे देवोंके आनेकी सूचना दी। सम्राट उसी समय अपने शृङ्गार-भवनमें जाकर सज-धजकर आये उनकी आज्ञा पाकर स्वर्गके देव सभामें आये। वे आते ही बोल उठे सम्राट! हम लोगोंने आपका स्नान करते हुए जो रूप देखा था, वह क्षणमात्रमें ही बदल गया। प्रभो! आपके इस रूपमें, और क्षण भर पहिलेके रूप-सौन्दर्यमें कितना अन्तर हो गया। अतः जैन-धर्मका यह सिद्धान्त कितना सत्य और मौजू है, संसार क्षण-भंगुर है।" देवोंकी विस्मय कारिणी बात सुन कर, सभामें उपस्थित समस्त मण्डली आश्चर्य प्रकट करने लगी। उसमेंसे कई सभासदोंने कहा, "आप यह क्या कह रहे हैं, सम्राटके रूपमें पहिलेसे अब क्या परिवर्तन हो गया है? हम लोग तो सम्राटके रूप-सौन्दर्यमें रञ्च-मात्र भी कमी नहीं पाते।" देवोंमेंसे एकने कहा, "मैं आप लोगोंके सामने सिद्ध कर देता हूं कि किस प्रकार अपने सम्राटके रूपमें परि-[वर्तन] होनेपर भी तुम नहीं जान पाये।" इस प्रकार कहकर उसी [सम]य उन्होंने जलसे भरा हुआ एक घड़ा सभामें लाकर रख दिया

सबके सामने भरे घड़ेमेंसे तृणसे एक बूंद जल निकाल लेनेपर भी घड़ेके जलमें कोई अन्तर नहीं हुआ।" सब लोगोंने एक स्वरमें कहा, "कभी नहीं, घड़ा तो ज्योंका त्यों भरा पड़ा है।" इस पर उक्त देवने कहा, "महाशयो ! यही आपके दृष्टि-कोणमें अन्तर है अब आप जान लें कि जिस प्रकार इस घड़ासे एक बूंद जल निकाल लेनेपर भी नजरोंमें यह ज्योंका त्यों दिखाई देता है उसी प्रकार सम्राटके रूपमें स्वल्प परिवर्तन हो जानेपर भी आप नहीं जान सके, किन्तु, वह हमारी दृष्टिमें नहीं छिप सकता, इस प्रकार कहकर दोनों देव स्वर्ग लोकको चले गये।

सम्राट त्यागी बनें

यद्यपि स्वर्गके दोनों देव चले गये, किन्तु वे महाराज सनत्कुमारके हृदयमें, वैराग्यके भाव बोते गये। महाराज अपने मनमें सोचने लगे, "संसारकी सभी वस्तुयें क्षण भंगुर हैं। वह दुःखका समुद्र है। इस शरीरके ऊपर हम इतना मोह करते हैं जो घृणास्पद दुःखप्रद तथा मल मूत्रोंका आगार है। बुद्धिमान मनुष्य इस क्षणभंगुर शरीरसे कभी भी प्रेम नहीं करते। इस अधम शरीरकी पांचों इन्द्रियां कितनी धोखेबाज हैं जिसका कोई ठिकाना नहीं। इनके पंजे में फँसकर मनुष्य अपना सर्वस्व गँवा देता है। ये जिस प्रकार चाहती हैं नाच नचाती हैं। मिथ्या आचार ही प्राणीका भयंकर दुश्मन है जो प्राणी उसके भ्रममें पड़ जाता है वह भवसागरसे पार करने वाले, आत्म कल्याण-कर्त्ता, सुख-निर्माता पवित्र जैन-धर्मसे विमुख हो जाता है। यह कथन सचहै कि ज्वरके रोगी जिसे पित्त

का प्रकोप रहता है। उसे दूध भी कड़वा लगता है। अतः मैं आज ही मायाबन्धनसे मुक्त हो जाऊँगा। इस प्रकार निश्चय कर चक्रवर्ती सनत्कुमारने हृदयमें वैराग्यका भाव ग्रहण कर, जिनालयमें जा जिन भगवानकी पूजा की। उन्होंने भिखारियोंको दान दिया इसके बाद वे अपने पुत्रको राज्य-भार देकर, वन चले गये। सम्राटने श्री चारित्रगुप्त मुनिराजके पास जाकर मुनि दिक्षा लेली। इसके अनन्तर वे कठिन तपमें संलग्न हो गये। उन्होंने पंचाचार आदि मुनि-व्रतोंका पालन किया। उसकी भीषण तपस्याका क्या वर्णन किया जाय ?

पाठकगण, सम्राट, तपस्यामें इतने तल्लीन हो गए कि उन्हें न शीतके प्रकोपका डर था और न गर्मीका भय। वे सम-भावसे शीतोष्ण सहन करने लगे। उन्हें भूख-प्यासकी क्या चिन्ता थी। जंगलके जीव उन्हें दुःख देते थे परन्तु वे उसे सहन करते थे। सच पूछिए तो जैन-धर्मके मुनियोंका धर्म-मार्ग बड़ा दुरूह है। यह उन्हीं का काम है जो शांति पूर्वक अविचल-भावसे कठिन-तपस्यामें तल्लीन रहते हैं। भला, साधारण मनुष्य क्योंकर उस मार्गमें जा सकता है. जिसपर धीर-वीर महा मुनि अपना जीवन तक उत्सर्ग कर देते हैं। अतः सम्राट इस प्रकार आत्मोन्नतिके दुरूह-मार्गसे अग्रसर होने लगे।

पुनः देवने परीक्षा ली

एक दिन सम्राट् आहार लेनेके विचारसे नगरमें चले गये। सौभाग्यसे या दुर्भाग्यसे उनके आहारमें कोई ऐसी वस्तु मिल गई

कुमारी अनंतमती का हरण पृष्ठ ८०

जिसके खानेसे उनके शरीरमें कुष्ट रोग हो गया। जिससे दुर्गन्ध आने लगी। यद्यपि, उसका समग्र शरीर व्याधि युक्त हो गया, किन्तु सम्राट्ने तनिक भी परवा नहीं की। उनका सारा शरीर फोड़से फूट गया। मानो, उनके सदृश धर्मध्वजोंके लिये शरीरका रोग क्या चीज़ है? वे जानते थे कि:—

कठिन व्याधियां भी शान्त हुए बाल न बांका कर सकते।
जो दृढ़ व्रत हैं तप-साधनमें, सदा यद्द परिकर रहते॥
कंटक-शूल मार्गमें उनके, शुभ्र सुमन बन जाते हैं।
आते हैं तो आमें बाधक, नहिं साधक पथराते हैं॥

इस प्रकार वे अपने शरीरके सम्बन्धमें सर्वथा निश्चिन्त रह कठिन तपस्यामें लीन रहे। एक दिनकी बात है कि सौधर्म स्वर्गके देवेन्द्रने देवताओंकी सभामें मुनियोंके पाँच तरहके चरित्रका वर्णन किया। भरी सभामें मदनकेतु नामक एक देवने देवेन्द्रसे पूछा, "नाथ! आपने मुनियोंके चरित्रके सम्बन्धमें जो वर्णन किया है, क्या उस प्रकारका चरित्रवान् कोई पुरुष भारतवर्षमें आज कल मौजूद है?" देवेन्द्रने कहा, हाँ, ठीक उस प्रकारका आदर्श व्यक्ति एक पुरुष-रत्न है जो सनत्कुमार चक्रवर्त्तीके नामसे पुकारा जाता है। उनके त्यागका वर्णन करना असम्भव है। समग्र भूमण्डलका एकाधिपत्यता छोड़, देव-दुर्लभ ऐश्वर्य-भोग-सुखके ऊपर लात मारकर इस समय पांच तरहके चरित्रका पालन कर रहे हैं।" देवेन्द्रकी आश्चर्य भरी बातको सुनकर उक्त देवके मनमें उनकी परीक्षा करने की इच्छा हुई। वह जल्दी ही जहां वे अपनी भीष्म-तपस्यामें तल्लीन थे, पहुंच गया। वह वहांपर क्या देखता है कि उनका समस्त शरीर

भयङ्कर रोगसे आक्रान्त हो रहा है किन्तु वे अटल हिमालयकी तरह अपनी तपस्यामें लीन हैं। उनके शरीरकी दुःखप्रद व्याधियां उन्हें तपस्याके ध्येयसे विचलित नहीं कर सकतीं। सम्राटकी कठिन तपस्या देखकर मदनकेतु अत्यन्त प्रसन्न हुआ किन्तु उन्होंने विचार किया कि इनकी परीक्षा करनी चाहिये ? देहके प्रति इनको मोह-ममता है या नहीं ? इस प्रकार सोचकर, उसने वैद्यका वेष बनाकर वनमें भ्रमण करना शुरू किया। वह उच्च स्वरमें बोलता जाता था, "मैं वैद्य हूं कठिनसे कठिन असाध्य रोग क्षण भरमें आराम कर देता हूं।" इस प्रकार पुकारता हुआ छद्मवेषी वैद्य महान तपस्वीके पाससे गुजरा। उसे देखकर सनत्कुमार महामुनिने उससे पूछा, "अजी तुम कौन हो ? अभी क्या चिल्ला रहे थे, किसलिये इस सुनसान जंगलमें घूम रहे हो ?" उसने उत्तर दिया, "मुनिराज, मैं एक प्रसिद्ध वैद्य हूं, मेरे पास ऐसी अमोघ औषधियां मौजूद हैं जिन से भयंकरसे भयङ्कर असाध्य रोग पल भरमें आराम हो सकते हैं। यदि आपको आजमाना हो तो अपने शरीरके रोगपर आजमावें, मैं तुरन्त आपका शरीर स्वर्ण समान किये देता हूं।" मुनिराजने हंसते हुए कहा, "वैद्यराजजी, अच्छे मौकेपर आये। मैं तो ऐसे ही वैद्यराजकी प्रतीक्षामें था जो मेरा असाध्य रोग दूर कर दे जिसके लिये मैंने कितना परिश्रम किया है परन्तु असफल रहा।" मुनि-राजकी बात सुनकर बने हुए वैद्यने प्रसन्न होकर कहा, "महामुनि, कहिये, आपके शरीरमें कौन असाध्य रोग है जो दूर नहीं होता। देखिये आपके कुष्ट रोगको मैं अभी बातकी बातमें जड़से दूर कर देता हूं।" महामुनिने कहा, "अजी वैद्यराजजी, आप किस घपलेमें

पड़े हैं मुझे कुष्ट रोगकी तनिक भी चिन्ता नहीं है, मैं उस भय-ङ्कर रोगकी चर्चा कर रहा हूं जिसके सामने यह कुष्ट रोग कुछ भी नहीं है।" अब देव चकराया, किन्तु डरते २ पूछा, कहिये वह कौन असाध्य रोग है।" मुनिराजने कहा, "वैद्यराजजी, संसारमें आवागमन ही एक ऐसा रोग है जिसे दूर करनेकी आवश्यकता है, क्या आप कृपाकर उसे दूर कर सकते हैं?" अब उस देवकी बोलती बन्द हो गयी। उसने लज्जासे अपना मस्तक झुका लिया, तथा विनम्र शब्दोंमें कहा—मुनिराज! आपके रोगकी दवा मेरे पास नहीं है, आप स्वयं अपने रोगका इलाज कर सकते हैं, भला मैं क्या कर सकता हूं।" महामुनिने गम्भीरतासे उत्तर दिया, "तब वैद्यराज, मुझे आपकी आवश्यकता नहीं है जो मेरे आन्तरिक रोग दूर नहीं कर सकता वे इसके बाद कहते ही गये:—यह शरीर क्षण भंगुर है, यह कितना अपवित्र है, गुण रहित है। यदि तुम ऐसे निकम्मे शरीरके रोग दूर कर दोगे तौभी मुझे स्वीकार नहीं जो रोग केवल वमन मात्रके संसर्गसे दूर हो सकता है उसके लिये उद्भट वैद्यराजों तथा उत्कृष्ट औषधिकी आवश्यकता क्या है? इस प्रकार कहकर महान तपस्वीने वमन द्वारा अपने एक हाथका रोग दूर कर निर्मल बना दिया। मुनिराजकी अपूर्व शक्ति देखकर वह देव आश्चर्य चकित हो रहा। उसने अपना असली रूप प्रकट कर हाथ जोड़ निवेदन किया, महामुनि! आप, धन्य हैं, देवेन्द्रने आपके अतुलित तप, योग, तथा देह सम्बन्धी निर्मोहकी जैसी प्रशंसा की थी, मैं उससे अधिक पा रहा हूं। नाथ, आप हीका जीवन सफल है, मैं किन शब्दोंमें आपका यशोगान करूं, आप

धन्य हैं। इस प्रकार महामुनि सनत्कुमारको प्रशंसा कर वह देव स्वर्गलोक चला गया। इसके बाद श्रीसनत्कुमारने कठिन तप द्वारा शुक्ल ध्यानस्थ होकर अपने समस्त घातिया कर्मोका नाशकर केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया। इन्द्र महेन्द्रतक श्रद्धासे उनकी पूजा करने लगे। इसके अनन्तर मुनिराजने अपने सद्धर्म कार्य द्वारा दुःखी संसारी जीवोंको मुक्तिका रास्ता दिखाकर अन्तमें अपने अघातिया कर्मका नाश कर मोक्ष-सदृश परम पवित्र अक्षय धामके अधिवासी हुए। हम भी श्रद्धा-भक्तिसे प्रातः स्मरणीय भगवान् सनत्कुमार केवलीकी पूजा करते हैं कि वे हमें भी केवल ज्ञान दें।

हे पाठक! जिस तरह श्री सनत्कुमार महामुनिने सम्यक् चरित्रका प्रकाशन किया उसी प्रकार प्रत्येक श्रेष्ठ पुरुषको करना चाहिये। कारण उससे लोक-परलोकमें सुखकी प्राप्ति होती है। श्री मल्लिभूषण भट्टारकके प्रधान चेला सिंहनन्दी मुनि थे। वे श्री मूल-संघ-सरस्वती गच्छमें चरित्र वालोंमें सबसे श्रेष्ठ थे। वे सबको आत्म कल्याणका पथ बता गये हैं अतः मैं प्रार्थना करता हूं कि वे मुझे भव-सागरसे अवश्य ही पार कर देंगे।

समन्त-भद्राचार्य की कथा।

(४)

श्री समन्त-भद्राचार्य की सुन्दर कथा सुनाता हूं।
जिसमें शुभ चरित्रका दर्शन सहज भावसे पाता हूं॥

प्रिय पाठक, आज मैं एक ऐसे महात्मा की जीवनी का वर्णन कर रहा हूं जिनकी कठिन तपस्या, विद्वता तथा लोक हितैषिता संसार भरमें मशहूर थी! उनका नाम भगवन् समन्तभद्र था! उनका जन्म भारतके दक्षिण प्रान्तके कांची नामक नगरीमें हुआ था वे बड़े तत्वदर्शी थे। न्याय, व्याकरण तथा साहित्य-शास्त्रमें उनकी प्रतिभा विलक्षण थी। उनका आचार एवम् तपस्याका साधन अनुपमेव था। वे अपने जीवनका अधिकांश समय शुद्धाचार, आत्मचिंतन ग्रन्थ-निर्माण, एवम् ग्रन्थोंके स्वाध्यायमें विताते थे।

आचार्यने रोगके पंजेमें क्या २ किया?

कर्म प्रधान विश्वकरि राखा, जो जस करे सो तस फल चाखा।

की उक्ति ठीक ही है। प्राणी को अपने कर्मके अनुसार फल भोगना ही पड़ता है। वह किसीके साथ रियायत नहीं करता। उसके चक्रके नीचे सबको पिसना पड़ता है। चाहे चक्रवर्त्ती हो या दर-दर ठोकर खानेवाला भिखारी सभीको कर्म महाराज मजा चखाते हैं। अतः एक समय भगवान् समन्तभद्र भी अपने कर्म-फलके अनुसार भस्म व्याधि नामक भयंकर रोगके चंगुलमें फँस

गये। देखिये, इतने बड़े तपस्वी उच्चकोटिके विद्वान भी कर्म-फल भोगनेसे नहीं वँच सके। वे जो कुछ खाते थे सब जलकर खाक हो जाता था, फिर भूख की ज्वाला जलाने लगती थी। अर्थात् भोजन करनेके थोड़ी देर बाद वे क्षुधासे व्याकुल हो जाते वे कभी कभी अपने विचित्र रोगके सम्बन्धमें सोचा करते—मैं समग्र शास्त्रों का विद्वान हुआ, संसार भरमें जैन-धर्मके प्रचार करनेमें तत्पर हुआ, किन्तु, आश्चर्य है कि मैं अपने इस भयङ्कर रोगका इलाज भी न कर सका। एक उपाय है जिससे इस रोगसे छुटकारा मिल सकता है। यदि मैं अच्छे २ पौष्टिक उत्कृष्ट भोजन का उपयोग कर सकूं तो रोगसे मुक्ति हो सकती है, अन्यथा इससे छुटकारा पाना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव है। किन्तु, इस स्थानमें वैसा उत्तम भोजन मिलनेका नहीं। तब क्या ही अच्छा हो कि मैं जहां उत्तम भोजन मिलने का प्रबन्ध हो वहाँ जाऊँ? इस प्रकार अपने मनमें विचार कर, आचार्य महोदय कांची नगरी छोड़ उत्तर प्रदेश की तरफ उत्तम २ भोजन प्राप्त करनेके लिये चल पड़े। वे कुछ दिनोंमें पुण्ड्र नामक नगरमें जा पहुंचे। उक्त नगरमें बौद्धोंका मठ था, उसमें सदावर्त्त दिया जाता था। आचार्य महोदय उत्तम भोजन पानेके विचारसे बौद्ध साधुका वेष बनाकर उक्त दानशालामें गये। किन्तु, वहाँ उनके रोगके शमन लायक भोजन नहीं मिला तब वे वहाँ से नौ दो ग्यारह हुए इस प्रकार देश भ्रमण करते वे दशपुर-मन्दीसोर नामक स्थानमें जा पहुंचे। उक्त स्थान पर वैष्णव सम्प्रदायका मठ था। उक्त मठमें भागवत मतके साधु रहते थे। वहां साधु लोग खूब तर माल उड़ाया करते थे। आचार्य

महोदय बौद्ध-वेष छोड़ कर भागवत सम्प्रदायका वेष बना कर उक्त मठमें प्रविष्ट हो गये। यद्यपि इस स्थानमें उन्हे पहिले से अच्छा भोजन मिलता था किन्तु, ऐसा बढ़िया भोजन न मिलता था जिससे उनका रोग शांत हो। आचार्य्य वहाँ से चल पड़े। अनेक नगरमें भ्रमण करते वे बनारस नामक प्रसिद्ध नगरमें गये। पाठक गण! यद्यपि आचार्य्य महोदयका वहिरङ्ग वेष जैन मुनियोंके प्रतिकूल था तथापि उनके अन्तस्तलमें सम्यग्दर्शनका पवित्र भाव पूर्णरूपेण विद्यमान था। अतः जिसप्रकार कीचड़में पड़ कर मूल्यवान रत्न अपना अस्तित्व नहीं गँवाता ठीक उसी तरह हमारे आचार्य महोदय हो रहे थे। वे योगलिंगका वेष धर कर नगरमें भ्रमण करने लगे। उन दिनों बनारस नगरका अधिपति शिवकोटी नामक राजा था। वह, शिवका अनन्य भक्त था। उसने भक्ति-भावसे प्रेरित हो कर शिवका एक बड़ा मन्दिर बनवाया था जिसमें उत्तम २ व्यञ्जनों का भोग लगता था। जिस समय आचार्य महोदय उस मन्दिरमें पहुंचे उस समय शिवका भोग लगने जा रहा था। उत्तम २ भोजन की चीजें देखकर उन्होंने अपने मनमें विचार किया यदि किसी तरह इस मन्दिरपर अपना अधिकार हो जाय तो रोग निवारण होने योग्य भोजनका सुयोग हाथ लगे। उसी समय शिवके पुजारियोंने भोग लगाकर उत्तम पदार्थ मण्डपसे बाहर लाकर रख दिये आचार्यने पुजारियोंसे कहा, "क्या आप लोगोंमें इतनी क्षमता नहीं है कि महाराजके भेजे हुए भोजन पदार्थ शिवजीको खिला दें?" पुजारियोंने विस्मययुक्त होकर आचार्यसे पूछा, 'नहीं, हम लोग तो ऐसा नहीं कर सकते? क्या आप ये पदार्थ भगवान शङ्करको

खिला सकते हैं ? आचार्य महोदयने स्पष्टतः उत्तर दिया, "हाँ. महाशयो ! मैं शिवजीको खिलानेको क्षमता रखता हूं ।" पुजारियों के आश्चर्यकी सीमा नहीं रही । उन्होंने आचार्यके विषयमें महाराजसे जाकर निवेदन किया, "महाराज ! आज शिवालयमें एक विचित्र योगो आया है । हम लोग जिस समय शंकरजीका भोग लगाकर ज्योंही सब सामान बाहर ले आये, उक्त योगो भोग लगाया हुआ पदार्थ देखकर बोल उठा—भला, देवताको भोग लगाने से क्या लाभ जब आप लोग अपने देवताको खिला नहीं सकते । जिस देवताके लिये इस प्रकारके उत्तम २ भोजन पदार्थ बन कर आते हैं, उन्हें देवताके स्थानपर दूसरे हड़प जाते हैं । यह अच्छी बात नहीं है । महाराज, उसने दावेके साथ कहा कि मैं देवताको भोजन खिला सकता हूं । उसने यहांतक कह दिया कि जिसके लिये इतना व्यय किया जाता है, उत्तम २ पदार्थ बनाया जाता है, उनके स्थानपर अन्य लोग मौज करते हैं इसे भक्तके पदार्थके साथ दुरुपयोग करनेके सिवाय क्या कहा जायगा ?" महाराजने पुजारियोंके मुँहसे आगत योगीके विषयमें चमत्कारपूर्ण बात सुनकर उनकी परीक्षाके लिए उत्तम २ भोजन पदार्थ लेकर उसी समय किया । योगीके पास जाकर उन्होंने प्रस्थान पूछा, "क्या आप वही व्यक्ति हैं जिसने हमारे पुजारियोंसे शिवको खिलानेकी बात कही है ? आचार्यने महा, "हां, महाराज मैं ही वह व्यक्ति हूं जो देवता को खिलानेका साहस रखता हूं । महाराजने चौंककर कहा, अच्छा, यह भोजनका सामान आपके सामने मौजूद है, आप शिवजीको भोजन कराइये तब मैं जानूं कि आपका कहना कहांतक सत्य है ।

शिवके बदले स्वयं खा गये ।

आचार्य महोदयने महाराज द्वारा लाये हुए भोजनके उत्तम २ पदार्थ मन्दिरके भीतर रखवा दिये। वहांसे पुजारी, नौकर सबके सब हटा दिए गये। महाराज भी मंदिरसे दूर एक स्थानपर योगीराजके चमत्कार पूर्ण कार्यका परिणाम देखनेके लिए प्रतीक्षा करने लगे।

आचार्य महोदय मंदिरमें चले गये। वे मंदिरमें निश्चिन्त बैठकर भोजनके उत्तम २ पदार्थ चट कर गये। वे कई दिनोंके भूखे थे, थोड़ी देरमें सबका सब खा गये। मंदिरसे निकलकर उन्होंने नौकरोंसे जूठा वर्तन निकालनेकी आज्ञा दी। महाराज योगीराजके चमत्कार पूर्ण इस कार्यसे आश्चर्य-सागरमें गोता खाने लगे। वे राजमहलमें लौट आये। रास्तेमें अनेक तर्क-वितर्क करनेपर भी वे बीती हुई आश्चर्य मई घटनाके रहस्योद्धारन करनेमें असमर्थ रहे। अब, आचार्य महोदयके लिये उत्तम २ भोजन करनेका अच्छा मौका हाथ आया। वे प्रति दिन शिवजीको खिलानेके नामपर स्वयं बढ़िया २ भोजनके पदार्थ खाने लगे। इस प्रकार छः महीनेमें वे रोगसे मुक्त हो गये।

भण्डा फोड़ कैसे हुआ।

एक दिन भोजनका समूचा सामान बच गया। उसे देखकर पुजारियोंने कहा, क्या आज शिवजीने भोजन नहीं किया? भोजनके बचे रहनेका क्या कारण है? आचार्यने कहा, "महाराजके उत्तम २ भोजनसे प्रसन्न होकर भगवान शंकर तृप्त हो गए हैं।

किन्तु पुजारियोंके मनमें शंकाका भाव उदय हो गया उन्होंने महाराजके पास जाकर योगीराजकी कही हुई बातें कहीं। महाराजने पुजारियोंसे कहा, "अच्छी वात है, सबसे पहिले इस वातका पता लगाना चाहिये कि वह किवाड़ वन्दकर क्या करता है ? इसके बाद उससे इस सम्बन्धमें पूछा जायगा, अभी नहीं। एकदिन आचार्य महोदय कहीं वाहर गये हुये थे। पुजारियोंने उसी समय एक चालाक लड़केको शिवजीकी पिण्डीके आगे फूल पत्तियोंमें योगिराजकी करतूत देखनेके लिए छिपा रक्खा था। सर्वदाकी तरह उसदिन आचार्यदेवने भोजनका सामा मंदिरके भीतर रखवाकर किवाड़ वन्द कर दिया। वे डटकर भोज़न करने लगे। भर पेट खा लेनेके वाद भी कुछ सामान बच गया तब आचार्यने किवाड़ खोलकर ज्यों ही मंदिरसे वाहर पैर रक्खा त्यों ही वे सामने ही महाराज तथा पुजारियोंको किसीकी प्रतीक्षामें खड़े पाते हैं। योगिराज तो समझ गये कि मेरा भंडाफोड़ हुआ। इसी वीचमें पुजारियोंने बचा हुआ भोजनका सामान देखकर आचार्यसे पूछा—योगिराज ? क्या आज भी शिवजीने भोजन नहीं किया ? क्या वे तृप्त हो गये हैं ? आचार्यके कुछ कहनेके पहिले ही मन्दिरमें छिपा हुआ लड़का सामने आ गया उसने कहा, "महाराज ! मैंने अपनी आंखोंसे इन्हें भोजन करते देखा है। शिवजीने कहाँ भोजन किया है, येही महाशय स्वयं खाये हैं।" आपने वड़ी चालाकीसे अपना उल्लू सीधा किया है। महाराज ! ये शिवजीके खिलानेके वदले धूर्त्तताका काम करते थे। इन्हें कौन योगी कहता है, ये तो धूर्तराज हैं।" लड़केको भेद भरी वात [illegible]कर पुजारियोंने उनको हांमें हां मिलाया उन्होंने महाराजसे

निवेदन किया, "प्रभो ! मालूम होता है कि ये शिव-भक्त भी नहीं है, नहीं तो ये ऐसा गर्हित कार्य कैसे करते। अतः इनकी परीक्षा ली जाय। सबसे पहिले ये शिवजीके सामने हाथ जोड़ें तभी सत्या-सत्यका निर्णय हो जायगा। महाराजने योगीराजसे कहा, "अच्छा, जो हो गया सो हो गया। 'बीती ताहि बिसारि दे आगेकी सुधि लेय' के अनुसार योगिराज ! आप शिवजीको नमस्कार करें जिससे आपके धर्मका पता चल जाय। अब आचार्य बड़े असमंजसमें पड़े, वे करें तो क्या करें ? कुछ सोचकर उन्होंने निर्भीकतासे उत्तर दिया,—महाराज ! मैं शिवजीको नमस्कार कर लूंगा मगर वे मेरा नमस्कार स्वीकार करनेके योग्य नहीं है। इसका कारण यह है कि वे संसारी विकारोंसे युक्त हैं। उन्हें मोह, माया, ममता, ईर्षा, द्वेष, काम, मत्सर तथा क्रोध व्याप्त हैं। जैसे पृथ्वीकी रक्षाका उत्तर-दायित्व एक साधारण मनुष्य नहीं ले सकता, वैसे ही मेरे परम पवित्र नमस्कारको संसारी मायासे युक्त देव नहीं सहन कर सकता मेरे पवित्र नमस्कारको केवल जैन-दिगम्बर मूर्ति ही स्वीकार कर सकतीं हैं जो संसारके अठारहों विकारोंसे परे हैं, जो परम पवित्र केवलज्ञानके समान प्रखर तेजके धारण कर्त्ता है जिनके ज्ञान-प्रकाश से समस्त ब्रह्माण्ड प्रकाशित होता है। यदि आप लोग दुराग्रह कर मुझे शिवकी मूर्त्तिके सामने नमस्कार करनेके लिये बाध्य करेंगे तो मैं आप लोगोंको चेतावनी देता हूं कि शिवकी मूर्त्ति फट जायेगी। महाराजने योगिराजकी बात सुनकर व्यङ्ग-विनोदमें कहा, "योगि-राज ! आप क्यों चिन्तित हो रहे हैं, कुछ परवा नहीं है। शिवजी की मूर्त्ति बलासे फट पड़े मगर आपको नमस्कार करना पड़ेगा,

समझे न। आचार्यने गम्भीरमुद्रामें उत्तर दिया, तथास्तु, ऐसा ही हो, महाराज मैं कल अपनी शक्तिका पूर्णरूपेण परिचय दूंगा।" पहरेदार, तबतक, योगिराजको कारागारमें आराम करने दो देखना ये हजरत कहीं रफ्फू-चक्कर न हो जांय। ऐसी आज्ञा देकर महाराज चले गये। महाराजकी आज्ञासे आचार्य कारागारमें बन्द कर दिये गये। उनके चारों ओर सिपाहियोंका सख्त पहरा बैठा दिया गया।

जैन धर्मकी महिमा प्रकट हुई।

कारागारमें जाकर आचार्य महोदय चिन्ता-सागरमें डूबने लगे—वे अपने मनमें सोचने लगे कि मैंने बिना सोचे-समझे क्या कह दिया। यदि मेरे कथनानुसार शिवजीकी मूर्त्ति नहीं फटी तब मेरी क्या दशा होगी। मैंने क्रोधमें आकर असम्भव बातकी प्रतिज्ञा कर दी। मुझे अपने लिये चिन्ता नहीं है कि मेरे ऊपर कैसी बीतेगी? मुझे एक ही बातकी चिन्ता है कि मेरे प्यारे पवित्र जैन धर्म सबकी नजरोंमें नीचे गिर जायगा। मेरा सिर काट लिया जाय, मेरे शरीरकी चमड़ी उधेड़ ली जाय इसकी मुझे चिन्ता तनिक भी नहीं है। जिन भगवान्की मैंने बड़ाई की है उनके प्रति लोगोंमें अविश्वास, अश्रद्धा एवं अपमानका भाव फैल जायगा जो मेरे लिये असह्य है। किन्तु, अब पछतानेसे क्या होता है? जो कुछ होना था सा हो चुका और आगे जो कुछ होने वाला है वह कल ही पूरा हो जायगा। तब चिन्ता क्या करूं? इस प्रकार विचार कर आचार्यने जिन भगवानमें अपना ध्यान लगाया। वे पवित्र

भावसे भगवानकी स्तुति करने लगे। उस समय उनके हृदयमें नाम मात्रका विचार नहीं था। सच है भक्तोंके निर्मल हृदयकी सच्ची पुकार कहीं व्यर्थ नहीं जाती? वह सुन्दर फल लाती है। इसमें तनिक भी संशय नहीं है। आचार्यके निष्कपट हृदयकी पुकार व्यर्थ नहीं गई। उसी समय अम्बिका (शासन देवी) का आसन हिल गया। देवी, आचार्यके सामने उपस्थित होकर कहने लगी, आचार्य आप व्यर्थमें चिन्तित हो रहे हैं आपके समान जिन-भगवान्के अनन्य सेवकका एक बाल भी बांका नहीं होगा। आपकी बात, अवश्य ही सत्य सिद्ध होगी। आप 'स्वयंभुवाभूत हितेन भूतले' के पद्यांश लेकर चौवीस तीर्थंकरोंके स्तवनकी रचना कर डालिये। आप विश्वास रखिये, आपकी बात सत्य निकलेगी, शिवकी प्रतिमा अवश्य फट जायगी। इस प्रकार आचार्यको आश्वासन देकर देवी चली गयी। अब, आचार्य महोदयकी सारी चिन्ता मिट गयी। उन्होंने देवीके कथनानुसार उसी समय जिन स्तवनकी रचना कर दी जो आज कल स्वयं भू-स्तोत्रके नामसे प्रचलित है।

शिवकी मूर्ति फटी

प्रातःकाल होते ही महाराज अन्य लोगोंके साथ उपस्थित हो गये। उस समय, वहांपर दर्शकोंकी बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई। महाराजकी आज्ञासे आचार्य कारागारसे बाहर निकाले गये। उनके मुँह की प्रतिभा देखकर महाराजने अपने मनमें विचार किया कि देखो, योगीराज कितने प्रसन्न दीख रहे हैं। इन्हें चिन्ता तो छू तक नहीं गई है। मालूम होता है कि ये अपनी बात सिद्ध करेंगे। नहीं तो ये

प्रसन्न नहीं दीख पड़ते। परन्तु इनकी परीक्षा अवश्य होनी चाहिये इस प्रकार सोचकर उन्होंने आचार्यसे कहा, "योगिराज! अब आप नमस्कारकर अपनी कही हुई बात सत्य सिद्ध कीजिये। मैंने शिवजीकी पिण्डीको सांकलसे बन्धवा दी है। महाराजकी आज्ञा सुनकर आचार्य चौबीस तीर्थंकरोंकी स्तुति करने लगे। इस प्रकार वे तीर्थंकरोंकी स्तुति करते करते चन्द्रप्रभ भगवानकी स्तुति कहने लगे बस शिव मूर्ति फट पड़ी। आकाशमें चारों ओर जय जयकार शब्द होने लगा। उस समय महाराजसे लेकर समस्त उपस्थित दर्शक मण्डलीके लोगोंके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। आचार्यके चमत्कार पूर्ण कार्य देखकर महाराजने हाथ जोड़कर श्रद्धासे कहा, "योगिराज, आपके चमत्कार पूर्ण अभूत पूर्व कार्यने हमें आश्चर्यमें डाल दिया है। किन्तु आप कौन हैं, कृपाकर अपना परिचय दीजिये। आपने शिव-भक्तका वेष धारण किया है, परन्तु आप शैव नहीं हैं, फिर आप किस धर्मके मानने वाले हैं।" आचार्यने महाराजकी बात सुनकर दो श्लोक पढ़कर सुनाये जो पाठकोंकी जानकारीके लिये यहाँ ज्योंके त्यों उद्धृत किये जाते हैं। आशा है कि पाठकगण इसे पढ़कर प्रसन्न होंगे।

'कांच्यांनग्नाटकोहं मल मीलन तनुर्लाम्बुशे पाण्डु पिण्डः,
पुण्ड्रोण्ड्रे शाक्य भिक्षर्दश पुर नगरे मृष्टभोजी परिव्राट्।
वाणारस्याम भूवं शशधर धवलः पाण्डुराङ्गस्तपस्वी
राजन् यस्यास्ति शक्तिः स वदतु पुरतो जैन निर्ग्रन्थ वादी॥
पूर्व पाटलि पुत्र मध्य नगरे भेरी मया ताडिता'
पश्चान्मालव सिन्धु ढक्क विषये कांची पुरे वैदिशे।

ग्रामोऽहं कर हाटकं बहु भटैर्विद्योत्कटैः संकटं,
वादार्थी विचराम्यहं नरपते शार्दूल विक्रीडितम्" ॥

अर्थात् –"मैं कांचीमें नग्न दिगम्बर, होकर राजन ! वास किया।
तनमें रोग हुआ जब मेरे, पुंड्र नगर-प्रस्थान किया ॥
बौद्ध साथ हो रहा वहांपर, फिर दशपुरको चला गया।
उत्तम २ भोजन खाया, परिव्राजक धर वेश नया ॥
शैव साधु बन काशी नगरीमें, कुछ दिन तक वास किया।
पर मैं स्याद्वादी जैनी हूं, निज रहस्य मैं खोल दिया ॥
यदि कोई होवे तो मेरे सन्मुख आ शास्त्रार्थ करे।
डंककी चोटों पर कहता, मनकी इच्छा पूर्ण करे ॥

\+ + +

"प्रथम पाटली पुत्र गया मैं वाद विवादाह्वान किया।
पुनः मालवा, सिन्धु देशमें ओढ़ाका प्रस्थान किया ॥
कांचीपुरी विदिश देशोंमें जाकर सबको ललकारा।
विद्वानोंने अबतक मुझसे शास्त्रार्थ नहिं स्वीकारा ॥
बड़े २ विद्वानोंसे है भरा नगर यह मैं आया।
कर हाटक जिसको कहते हैं, चमत्कार निज दिखलाया ॥
सिंह समान भटकता रहता, है कोई शास्त्रार्थ करे।
डंकेकी चोटोंपर कहता, मनोभिलाषा पूर्ण करे ॥"

इस प्रकार कहकर पूज्य आचार्यने शैव सम्प्रदायका वेष छोड़कर जैन-मुनिका वेष ग्रहण कर लिया। आचार्यने अभिमानी पंडितोंको शास्त्रार्थमें हराकर जैन-धर्मकी प्रतिष्ठा बढ़ाई। उन्होंने अनेकान्त स्याद्वादके पराक्रमसे अपने प्रिय धर्मकी महिमा बढ़ाकर

कुदेवके आगे अपना शीश नहीं झुकाया, वे अन्त तक अपने जिन धर्म पर अविचल रहकर उसकी धाक जमानेमें समर्थ हुये। श्री-समंतभद्र भविष्यके तीर्थंकर हैं। उन्होंने अधिकांश एकान्त वादियोंको शास्त्रार्थमें नीचा दिखाकर, सर्व साधारणके सामने जैन-धर्म की महानता सिद्ध कर दी। इस प्रकार उन्होंने सम्यग्ज्ञानकी अखण्ड-ज्योति हर जगह जगाई। जबसे राजा शिवकोटिने आचार्य द्वारा चमत्कार पूर्ण घटना देखी तभीसे उनके हृदयमें जैन-धर्मके प्रति असीम श्रद्धा उत्पन्न हो गई। उनके मनके ऊपर, निर्मल बुद्धिने अपना अधिकार जमाया, जिससे उनका अन्तःकरण चारित्र मोहनी कर्मके नाश हो जानेसे वैराग्य-भावसे ओत-प्रोत हो गया। राजाने राज्य-शासनका भार छोड़ जैन-धर्मकी दीक्षा ग्रहण कर ली। इसके अनन्तर उन्होंने गुरुके पास जाकर शास्त्रोंका गहरा अध्ययन किया। उन्होंने मनुष्योंकी दिन-प्रति दिनकी क्षीण आयु देखकर, लोगोंके उपकारार्थ श्री लोहाचार्य द्वारा निर्मित विशाल आराधना ग्रन्थका, जिसमें चौरासी हजार श्लोक थे, संक्षिप्त रूपमें लिखकर महान् कार्य किया। आपके लिखे ग्रन्थमें सिर्फ साढ़े तीन हजार श्लोक हैं। वह पवित्र ग्रन्थ श्री समन्तभद्राचार्य तथा शिव-कोटी मुनि हमें सुख देने वाले हों। श्रीविद्यानन्दी गुरु महाराज भी सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्रके प्रदाता हैं। वे गजेन्द्रके मारनेवाले सिंहके समान हैं। श्री मल्लि-भूषण मुनिराज समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता, अपूर्व विद्वान तथा श्रुत ज्ञानके भण्डार हैं। वे कृपा कर मोक्ष दें ऐसी प्रार्थना है।

ब्रह्मदत्त राजाको एक व्यंतर (रसोइया था) फलोंके लोभमें फंसाकर समुद्रमें लेगया
मैं वही रसोइया हूं जिसपर आपने गरम खीर डाली थी और समुद्रमें फेंक दिया

श्री संजयन्त मुनिकी कथा।

(५)

पाठक, पढ़ लो श्री संजयन्त मुनि कैसे थे तप-मानी।
स्वर्ग-देवसे पूज्य हुए हैं, वे वन कर केवल-ज्ञानी॥
कठिन तपस्या करके ऐसे आत्म-ध्यानमें लीन रहे।
जैन-धर्म रूपी अगाध जलमें जैसे वह मीन वहे॥

सुमेरु पर्वतके पश्चिम दिशाके अन्दर गन्धमालिनी नामक देश है। उसकी राजधानीका नाम वीत शोकपुर है। उन दिनों उक्त नगरमें वैजयन्त नामक राजा राज्य करते थे। भव्य श्री नामकी उनकी रानी थी। राजाके दो पुत्र थे जिनका संजयन्त और जयन्त नाम था।

पिता तथा पुत्र तपस्वी बने।

एक दिन ऐसी घटना घटी जिससे राजा तथा उनके दोनों पुत्रके हृदयमें वैराग्य भाव उत्पन्न हो गया। घटना यों घटी:—संयोगवश, राजा वैजयन्तके हाथीकी मृत्यु बिजलीके गिरनेसे हो गयी। जब राजाने अपने हाथीकी मृत्युका समाचार सुना, उसी समय उनके हृदयमें राज्य-वैभव-सुखसे अलग होकर तपस्या करने का भाव उत्पन्न हो गया। उन्होंने अपने दोनों पुत्रोंको बुलाकर उनके ऊपर राज्य-भार सौंपनेका अपनी हार्दिक इच्छा प्रकट की। पिताकी बात सुनकर दोनो पुत्रोंने विनम्र शब्दोंमें कहा,—पिताजी हमें राज्य-शासन नहीं चाहिये। इसका कारण यह है कि हम नहीं

चाहते कि राज्यके सदृश उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य अपने सिरपर ले कर शान्तिपूर्ण रहकर तपस्या करनेके सत्कार्यसे बंचित हो जावें। सच तो यह है कि हम लोग भी आपके साथ चलकर मुनि होकर आत्म-कल्याण-साधना करेंगे। अतः पिताजी, आप राज्य-सदृश झंझटके कार्य नहीं ले सकनेके लिये हमें क्षमा प्रदान करें। हम आप के प्रस्तावको स्वीकार करनेमें असमर्थ हैं।" अपने प्रिय पुत्रोंकी ऐसी लालसा देखकर राजाने उन्हे मुनि होनेकी आज्ञा दे दी। फिर वे कैसे राजा बने रहते जबकि सामने ही उनके दोनों पुत्रोंने वैराग्य धारण कर लिया। राजा वैजयन्तने, संजयन्तके पुत्रको राज भार देकर तपस्या करनेके लिये बनमें प्रस्थान कर दिया। राजा वैजयन्तने अपने उग्र तप द्वारा घातिया कर्मका नाशकर केवल ज्ञानकी प्राप्ति कर ली। उनकी तपस्या बड़ी भीषण थी। वे कठिनसे कठिन दुःख सहते हुए अन्तमें केवल ज्ञानको प्राप्त हुए। उस समय स्वर्गके देवता आकर उनकी पूजा करने लगे। उग्र तपस्याके प्रभावसे उनका दिव्य रूप अलौकिक हो रहा था। अपने पूज्य पिताका अपूर्व रूप देखकर जयन्तने निदान किया कि अबतककी मेरी की हुई तपस्याके फल स्वरूप मुझे इनके (पिता) समान ही सुन्दर रूप तथा विभूति मिले। पाठकगण, इस प्रकार निदान करनेपर उनकी मनोकामना पूर्ण हुई। वह मरनेके बाद धरणेन्द्र हुये। प्रिय पाठकगण, एकका यह परिणाम हुआ, अब दूसरेके विषयमें गौरसे पढ़िये।

घोर तपस्या।

संजयन्त मुनि घोर तपस्या करने लगे, वे महीनों भर उपवास

रहने लगे। इस प्रकार वे भूख-प्यासकी परवा न कर कठिनसे कठिन शारीरिक-कष्ट सहर्ष सहन करने लगे, यद्यपि भीषण तपस्याके कारण, उनका शरीर एकदम दुबला-पतला हो चला, तथापि उन्होंने तपस्यासे मुँह नहीं मोड़ा। अब उनकी तपस्या और भी कठिन हो गयी। पहिले तो उपवासतक ही उनकी तपस्या थी। अब वे सूरजकी तरफ अपना मुँहकर तपस्या करने लगे। उन्हे गर्मी, शीत, वर्षाका तनिक दुःख नहीं था। वे सब ऋतुके कष्ट सहते हुए वृक्षके नीचे अपनी अखण्ड योग-साधनामें लीन रहने लगे। वनके जीव उन्हें सताते थे परन्तु, वे उनकी क्यों परवा करते। वे तो निश्चिन्त होकर आत्म-ध्यानमें संलग्न हो रहे थे। भला, उन्हें संसारकी विघ्न-बाधाएं क्यों विचलित करतीं ?

मुनिकी आत्म परीक्षा।

एक दिन, जिस स्थानपर मुनिराज अपनी कठिन तपस्यामें मग्न थे, उसी समय उनके ऊपर आकाशमें विद्युद्दंष्ट्र नामक विद्याधरका विमान पहुंचा। उसका विमान रुक गया। विमान रुक जानेसे विद्याधरके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। उसने नीचे देखा तो तपस्वी संजयन्त मुनिको ही विमान रुकनेका कारण समझा। वह क्रोधसे आग-बबूला हो गया। उसने मुनिराजको अनेकों कष्ट दिये किन्तु, धीर वीर मुनिराज, शारीरिक कष्टोंसे क्यों घबड़ाते ? कच्च तपस्वी तो थे नहीं वरन् वे निश्चल भावसे ध्यानस्थ रहे। जब उक्त विद्याधरने देखा कि मुनिराज उसके उपद्रव करनेपर भी ज्योंके त्यों तपस्यामें लीन हैं तब उसके क्रोधका पारा एकदम ऊपर

चढ़ गया। पाठक! भला कहीं प्रवलवायुके झोंकेसे सुमेरु गिरि पर्वतका कुछ बिगड़ सकता है? इस प्रकार क्रोधित होकर उस अधम विद्याधरने मुनिराजको अपने विद्या बलसे उठाकर भारतके पूर्व दिशाकी ओर बहने वाली सिंहवती नामक भयङ्कर नदीमें डाल दिया। नदी इतनी गहरी तथा भयङ्कर थी कि जिसमें पांच बड़ी २ नदियां आकर मिली थीं। मुनिराजके ऊपर और आपत्ति आयी। वहाँके लोगोंने मुनिराजको राक्षस समझकर उनके ऊपर पत्थर वर्षाना शुरू किया किन्तु इतने असह्य कष्टके होनेपर भी वे हिमालयके समान अचल बने रहे। सच है, सच्चे तपस्वियोंके आत्म-बलके आगे संसारके असह्य-कष्ट अपना कुछ भी असर पैदा नहीं कर सकते। सच्चे तपस्वी, क्या संसारी विघ्न बाधाओंसे घबड़ा जाते हैं? नहीं, वे परीक्षा रूपी अग्निमें बारम्बार तपाये जानेपर खरा सोना साबित होकर अपनी त्याग-तपस्याका ज्वलन्त उदाहरण छोड़ जाते हैं। उनके विषयमें यह उक्ति कितनी ठीक है।

शांतिचित्तसे तपकर, मिथ्या राग द्वेषसे रहकर दूर।
निज साधनका परिचय देकर, परिग्रहका कर देते चूर॥
निन्दा-स्तुति सम सुख या दुख है, महल बना हो या श्मशान।
निर्ग्रन्थी हो रत्न तृणोंमें, रखते अपना भाव समान॥
प्राणि मात्रपर समदर्शी बन, प्रेम भाव दरशाते हैं—
वेही सच्चे मुनि हैं जगमें, वही पूज्य बन जाते हैं॥

पाठकगण! संजयन्त मुनिराज सच्चे तपस्वी थे, उन्होंने अधम विद्याधर द्वारा दिये हुए समस्त दुःखोंको धीरतासे सहन कर अपनी अनुपमेय धीरता, सहिष्णुता एवं त्याग तपस्याका परिचय

दिया। उनके जितने घातिया कर्म थे नष्ट हो गये, उन्होंने केवल ज्ञानकी प्राप्ति कर ली। इसके बाद अपने अघातिया कर्मके नाश होते ही संजयन्त मुनि मोक्ष-धामके वासी हुए। एक दिन मुनिराज के छोटे भाई धरणेन्द्र अन्य देवोंके साथ उनके दर्शनार्थ आये। अपने भाईके शरीरकी दुर्दशा देखकर धरणेन्द्र अत्यन्त क्रोधित हो गये। वे समझ गये कि नगर वालोंने मेरे भाईकी ऐसी बुरी हालत कर दी है। उन्होंने समस्त नगर निवासियोंको 'नाग पाशमें बांध कर गिरा दिया। नगर निवासी त्राहि २ कर कहने लगे, "प्रभो, हम निर्दोष हैं, हमें कष्ट क्यों दे रहे हैं, हमने आपके भाईके साथ कुछ भी दुर्व्यवहार नहीं किया है। पापी विद्युद्दंष्ट्र नामक विद्याधरने दुष्टता की है। हम नाहक मारे जाते हैं। नाथ, हमारी रक्षा कीजिए, और मेरे अपराध क्षमा कीजिये, हे दयालु, हम निरपराध हैं। भगवन्! ऐसा न करें। जिसने आपके भाईके ऊपर जुल्म-सितम ढाया है आप उसे छोड़ हम निर्दोषियोंको क्यों सता रहे हैं? देव! "खेत खाय गदहा और मार खाय जुलहा" की उक्तियां चरितार्थ हो रहीं हैं। नगर-निवासियोंका कातर क्रन्दन सुनकर धरणेन्द्रने उन्हें मुक्त कर दिया। किन्तु उनका क्रोध अभी शमन नहीं हुआ था। धरणेन्द्रने उस विद्याधरको पकड़कर नाग-पाशमें कसकर बांध दिया। विद्याधरके ऊपर बड़ी मार पड़ी। वह त्राहि २ चिल्लाने लगा। धरणेन्द्र चाहते थे कि उसे पीटकर समुद्रमें डाल दें—जिस प्रकार उसने उनके भाईके साथ दुर्व्यवहार किया था। इसी बीचमें दिवाकर नामक एक देवने दयासे प्रेरित होकर धरणेन्द्रसे निवेदन किया, आप इस निर्दोषको क्यों सता रहे हैं? क्या आप

नहीं जानते कि यह अपने भाईसे, अपने चार-जन्मकी शत्रुताका बदला ले रहा है। इसमें इसका अपराध ही क्या है ? धरणेन्द्रने कहा, आप वह कथा कहिए जिसके कारण इसके हृदयमें 'बदलेकी दुर्भावना' अबतक अपना काम कर रही है।

दिवाकर देवने कहना शुरू किया

इसी भारतवर्षके सिंहपुर नामक एक नगरमें राजा सिंहसेन राज्य करते थे। उनकी बुद्धि प्रखर थी। वे राजनीतिक-मामलोंमें अच्छी जानकारी रखते थे। रामदत्ता नामक उनकी रानी थी, वह भी अपने पतिके समान ही सरल स्वभाव वाली चालाक स्त्री थी। राजा सिंहसेनके दरबारमें श्रीभूति नामक धूर्तराज मंत्री था। उसका स्वभाव कुटिलतासे भरा हुआ था; दूसरोंको ठगना ही उसका प्रधान पेशा था। एक दिनकी बात हैं कि पद्मखण्डपुरनिवासी समुद्रदत्त नमक एक सेठ-पुत्रने धूर्त शिरोमणि श्रीभूतिके पास जाकर, विनम्र शब्दोंमें निवेदन किया, "दीनबन्धु, मैं बाणिज्य-व्यवसाय कार्य्य करनेके बिचारसे विदेश जा रहा हूं। मेरे पास ये पांच रत्न हैं, मैं आपके पास अमानतके तौर पर रखना चाहता हूं, कारण यह है कि मेरे ऊपर न जानें कब कौन दुःख आवे, इसलिये, आवश्यकता पड़ने पर मैं अपनी चीज़ आपके पाससे ले जाऊँगा। इस प्रकार निवेदन–कर शेठ-पुत्रने मंत्रीके पास रत्न रख कर विदेश यात्राके लिये प्रस्थान कर दिया। मंत्री तो दूसरोंकी अमानतमें खियानत करनें का आदी था। उसने प्रसन्नता पूर्वक पांचो रत्न अमानतकी तौर पर अपने पास रख लिये। कुछ वर्षोंके बाद, विदेशसे बहुत धनोपा–

र्जन कर समुद्रदत्तने अपनी जन्मभूमिके लिये प्रस्थान किया। वह एक जहाजपर कमाया हुआ धन भरकर चला। किन्तु दुर्भाग्यसे समुद्रदत्तका जहाज किनारे पर आकर फट गया। जहाजके फटने से उसका समूचा माल विकराल समुद्रके अन्तस्तलमें चला गया। संयोगसे, समुद्रदत्तकी जान बच गयी। वह अपना शरीर लेकर घर आया। दूसरे दिन आफतका मारा वह श्रीमूर्तिके पास जाकर अपनी अमानतकी चीज़ मागने लगा, इसपर धूर्त मंत्री बिगड़ उठा। मंत्रीने कहा, "अरे! झूठे! कैसे रत्न? मालूम होता है कि जहाज डूबनेसे तू पागल हो रहा है! यहांसे चले जाओ।" मंत्रीके पास कुछ लोग बैठे थे, उसने उनसे कहा, "महाशयो! देखिये, मेरी बात सच हुई या नहीं? क्या मैने आप लोगोंसे नहीं कहा था कि यहां पर कोई गरीब आदमी पागल बनकर झूठा ही रत्न मांगनेके नामपर झगडा मोल लेगा। आपही सोचिये, इस दर-दर भीख मांगने वालेके पास रत्न कहांसे आये? क्या किसीने कभी इस भिखमंगेके पास रत्न देखे थे? यह झूठा इल्जाम लगाता है!" इस प्रकार कहकर उसने समुद्रदत्तको अपने आदमियोंसे निकाल देनेकी आज्ञा दी। बेचारा समुद्रदत्त बेरहमी और बेदर्दीसे निकाल दिया गया। अब उसके लिये कहीं भी ठिकाना नहीं था। एक तो वह विपत्तियोंका मारा था, उसकी सारी सम्पत्ति समुद्रके गर्भमें चली गयी थी। दूसरे, इस धूर्तराज मंत्रीने उसकी आशा पर पानी फेर दिया। उसकी आशा रूपी टिमटिमाता चिराग भी गुल कर दिया गया। वह करे तो क्या करे? किससे जाकर अपनी दर्द-भरी कथा सुनावे। अपने भविष्यके समयके लिये ही उसने मंत्रीके पास अपने रत्न अमानतके तौरपर जमा

किये थे, परन्तु वह धूर्त उसे रत्न कहां देगा। उल्टे पागल बनाकर उसने एक दुखी आत्माको अपने घरसे निकाल बाहर किया ऐसे ही समय पर कविकी उक्ति कैसी ठीक लगती है, वह यों है—

'जुल्मकी हद हो गयी, जालिमने कैसा दुख दिया।
गुड़ समझकर खा लिया था वह धतूरा हो गया ॥'

दैवोपि दुर्बल घातकः, की उक्ति ठीक जँचती है। समुद्रदत्त क्या करता, उसके सिरपर वज्रपात हो गया। उस समय उसके चारों ओर विपत्तियोंके बादल घिर आये थे। उसके अन्तस्तलमें अपने रत्न नहीं मिलनेका शोक छा गया। वह, उसके शोकमें पागलसा हो गया। अब वह समूचे नगरमें, जोर २ से चिल्लाने लगा— धूर्त मंत्रीने मेरे पांच रत्न रोक लिये हैं वह नहीं देता है। इस प्रकारकी टेर वह लगाता। सड़क, गली, बाजार, राजमहल तक समुद्रदत्तने अपनी पुकार मचायी मगर किसीने उसकी दर्द भरी दास्तान नहीं सुनी। सब उसे पागल समझकर दुतकार देते थे। अन्तमें लाचार होकर उसने राजमहलके पीछे एक वृक्षपर चढ़कर यही आवाज लगायी। इस प्रकार वह प्रति दिन रात्रिके पिछले पहर उसी पेड़पर चढ़कर अपनी पुकार लगाता। यद्यपि रानी उसकी पुकार प्रति दिन सुनती पर उसे पागल समझकर उसकी बातपर ध्यान नहीं देती थी। किन्तु, एक ही समयमें प्रतिदिन एक ही बात सुनकर उसके हृदयमें सन्देह उत्पन्न हुआ कि बात क्या है ? रानी अपने मनमें तर्क-वितर्क करने लगी कि लोग उसे पागल कहते हैं मगर वह पागल नहीं है। क्या यह पागल का प्रलाप है ? इस प्रकार सोचकर रानीने महाराजसे निवेदन

किया, "प्रभो! रात्रिके पिछले पहर मेरे राज भवनके पीछे एक आदमी एक ही समयमें एक बात प्रति रात्रि चिल्लाता है। लोग उसे पागल कहते हैं। मगर, महाराज! वह पागल नहीं है? क्या पागल प्रति दिन एक ही बात एक ही समयमें कहता है? मुझे संशय हो रहा है कि कहीं उसके प्रति अन्याय तो नहीं हुआ है? महाराज! वह सताया हुआ है, आप उससे पूछकर पता लगाइये कि क्या बात है? नाथ! कहीं ऐसा न हो कि पागलपनके नामपर कोई बेगुनाह बेकस सताया जाय।" रानीकी बात सुनकर महाराजने कहा,—"मैं अभी पता लगाता हूं।" इस प्रकार कहकर उन्होंने समुद्रदत्त-को अपने पास बुलाकर उसकी पुकारका कारण पूछा। समुद्रदत्तने आप बीती कह सुनायी। उसकी बात सुनकर महाराज सोचने लगे कि किस प्रकार धूर्त मंत्रीके चंगुलसे बेगुनाह समुद्रदत्तके रत्न निकाले जांय। रानीने कहा, "महाराज, आप निश्चिन्त रहें मैं तुरंत ही मंत्रीसे इसके रत्न निकाल लेती हूं।" महाराज अत्यन्त प्रसन्न हुए दूसरे दिन रानीने मंत्री श्री भूतिको बुलाकर कहा, "मंत्रीवर! मैं सुनती हूं कि आप सतरंजके प्रसिद्ध खिलाड़ी हैं। अतः आज आप मेरे साथ सतरंज खेलकर अपनी कला दिखलाइये।" इतनेमें रानी के इशारेसे दासी सतरंजके पासे ले आयी। उधर मंत्री डर गया; उसने कांपते हुए कहा, "महारानी! भला, मैं आपके साथ सतरंज खेलनेकी धृष्टता कैसे करूंगा? यदि महाराज सुनेंगे तो क्या कहेंगे रानीने कहा, "मन्त्रीवर, आप चिन्ता न करें। मैंने महाराजसे आज्ञा ले रखी है, इसमें डरने की क्या बात है? आप बड़े हैं भी केवल मनोरंजनवश ही खेलिये। इस प्रकार रानीके आश्वासन

देनेपर मन्त्रीके जीमें जी आया। वह सतरंज खेलनेपर तयार हो गया। रानीका उद्देश्य था कि किसी प्रकार मन्त्रीको खेलमें अट-काये रखें और अपना मतलब सिद्ध कर लें। उसने मन्त्रीको बातोंमें भुलाकर उसके घरको सब बातें ज्ञात कर लीं। इसके बाद उसने धीरेसे अपनी दासीको इशारा किया। वह तो पहिलेसे ही सिखा-पढ़ाकर तैयार की गयी थी। दासी श्री भूतिके घर जाकर उसकी स्त्रीसे बोली:-तुम्हारे पति मंत्रीने मुझे भेजकर पाँच रत्न मगवाये हैं। वे विपत्तिमें फंस गये हैं। मुझे वे रत्न जल्दी दो। मंत्रीकी स्त्री कोई साधारण स्त्री नहीं थी। वह ताड़ गयी, उसने फटकारकर कहा, "चल हट यहांसे, मेरे पास किसने रत्न रखे हैं—जा उनसे कह देना कि वे ही आकर अपने रखे हुए रत्न ले जांय। रानी दासीके मुंहसे समाचार सुनकर दूसरी युक्ति काममें लायी। उसने हार-जीतकी बाजी रखकर खेलनेका प्रस्ताव किया। पहिले मंत्री हिचकिचाया फिर उसने अपने मनमें विचार किया कि रानीके साथ खेलकर काफी धन प्राप्त करूंगा। इस प्रकार लोभमें फँस उसने अपनी अंगुठी बाजीपर लगा दी। रानीने मंत्रीकी बेशकीमती अंगुठी जीत कर दासीको देकर मन्त्रीके घर पुनः भेजा। दासी अंगूठी लेकर उसके घर जा पहुंची। उसने अंगुठी देकर कहा, "देखो! तुमने मुझे पहिले रत्न नहीं दिये थे जिसके कारण तुम्हारे पतिको कितना कष्ट सहन करना पड़ा है। तुम्हारे पतिने मुझे अंगूठी देकर कहा है, यदि तुम्हें मेरी जान प्यारी है तो रत्न दे देना, अगर रत्न प्यारा है तब कोई बात नहीं।" मन्त्रीकी स्त्री इस बार अंगूठी देखकर समझ गयी कि सचमुचमें उसके पतिने रत्न मांगे हैं। दासीका दाव

लग गया। उसने दासीको पांचों रत्न दे दिये। दासी रत्न पाकर प्रसन्नताके मारे फूली नहीं समायी। वह दौड़ी २ रानीके पास आई उसके हाथमें पांचों रत्न रख दिये। उधर खेल समाप्त हो गया। रानीने महाराजके पास पांचों रत्न भेज दिये। महाराज रत्न देख कर रानीकी बुद्धिकी तारीफ करने लगे। महाराजकी आज्ञासे समुद्रदत्त राज-सभामें बुलाया गया। समुद्रदत्तको आज्ञा दी गयी कि वह रत्नोंकी राशिमेंसे अपने रत्न ढूंढ़ निकाले। उसने समस्त रत्नोंमेंमें अपने पांचों रत्न पहचान कर निकाल लिये महाराजसे बोला दयानिधे! येही पांचों रत्न मेरे हैं जिन्हें मंत्रीने रोक रखे थे।" सच है अपनो चीज सब कोई पहचान लेता है। महाराजने मंत्री श्री भूतिको बुलाया, उसे देखकर महाराजका हृदय क्रोधसे जलने लगा। उन्होंने दुष्ट मंत्रीके सामने पांचों रत्न रखकर कड़ककर कहा; "दुष्ट मंत्री, क्या यह (समुद्रदत्त) पागल है? तुमने इसे पागल बनाकर रत्न हड़प लिया था। यदि रानीकी बुद्धिमानीसे ये रत्न तुम्हारे घरसे नहीं आते तो यह बेगुनाह बेमौत ही मर जाता दुष्ट, इसका कलङ्क किसके सिरपर लगता। तुमने इतने बड़े ऊंचे पदपर रहकर, कितनी ज्यादती की है, एक निर्दोश गरीबको लूट कर अपने ऊंचे पदका कितना अपमान किया है। न जाने तुम्हारे अन्यायसे अन्य कितनी बेगुनाह प्रजा, सताई गई होगी। इस प्रकार कहकर महाराजने उपस्थित सभासदोंसे पूछा, सभासदो, इस दुष्ट मंत्रीको क्या सजा दी जाय जिससे भविष्यमें कोई कर्मचारी प्रजाके साथ अन्याय करनेका दुस्साहस न कर सके। अतः इसके दुष्कर्मके अनुसार ही इसे कड़ीसे कड़ी सजा दी जानी

चाहिये, बोलिये आप लोग क्या राय देते हैं ? महाराजकी आज्ञा सुनकर सभासदों तथा राज्य कर्मचारियोंने एक राय होकर सर्व-सम्मतिसे निवेदन किया, "प्रभो ! मंत्रीके लिये तीन प्रकारका दण्ड निश्चित है, ये पसन्द कर लें कि कौनसा दण्ड स्वीकार करते हैं, पहिली सजा है कि एक सेर पक्का गोमय खाना। दूसरी सजा पह-लवानों द्वारा बत्तीस घूंसे खाना। तीसरी सजा, सर्वस्व हरणकर देश निकालाका दण्ड। राज कर्मचारियों द्वारा निर्णय किये हुए दण्डकी पूर्त्तिके लिये महाराजने मंत्रीसे कहा, तुम्हारे लिये तीन प्रकारकी सजायें सभासदोंने तजबीज की हैं, बोलो, इनमेंसे कौन सी सजा तुम भोगोगे।" श्रीभूतिने गोमय खाना स्वीकार किया। किन्तु उसने गोमयका एक ग्रास न खाकर चिल्लाकर कहा, मैं घूसे ही खाऊंगा। तुरंत ही एक पहलवानने उसे घूसे लगाने शुरू किये। कुछ घूसे खाकर ही उसका प्राण पखेरू उड़ गया। मरनेके बाद मंत्रीका जीव भयंकर सर्पकी योनिमें जन्म धारण कर महाराजके खजानेपर रहने लगा। उधर महाराजके मनके ऊपर मंत्रीकी दर्द-नाक मृत्युसे बैराग्यका प्रभाव पड़ा। उन्होंने अपना समस्त धन परोपकारके कार्यमें खर्च कर वनमें जाकर धर्माचार्य महामुनिसे दीक्षा ग्रहण कर ली। महाराज कठिन तपस्याकर अपना शरीर छोड़ महाराज सिंहसेनके पुत्र हुए जिसका नाम सिंहचन्द्र हुआ। एक दिन महाराज अपना खजाना देखने गये। श्री भूतिके जीव रूपी सर्पने पूर्व जन्मकी बात ख्यालकर महाराजको काट खाया। महाराजकी मृत्यु हो गयी। वे मरनेके बाद सल्लकी नामक वनमें हाथी हुए। इधर राज-मंत्री सुघोषने सर्पके काटनेसे महाराजकी

मृत्युका समाचार सुन क्रोधसे अपने मंत्रबल द्वारा समस्त सर्पोंको बुलाकर अग्नि-कुण्डमें पैठकर चले जानेकी आज्ञा दी। श्री भूतिके जीव रूपी सर्पके अतिरिक्त समस्त सर्प अग्नि-कुण्डमें प्रवेश कर चले गये। अब श्री भूति-रूपी सर्प बाकी बच गया। मंत्रीने उससे कहा, "याती महाराजका शरीर विष रहित कर दो या अग्निकुण्ड-में प्रवेश करो, दोनोंमें एक बात स्वीकार कर लो। वह (सर्प) बड़ा क्रोधी था उसने महाराजके मृत शरीरसे विष वापस लेनेके बजाय अग्नि-कुण्डमें जाना स्वीकार किया। किन्तु, वह उसमें प्रवेश करते ही जलकर खाक हो गया। सर्प भी मरनेके बाद उसी बनमें मुर्गा हुआ जहां महाराज हाथी हुए थे। यह निश्चय है कि पापी जब मरते हैं तब उनका जन्म खराब योनिमें होता है। कर्मका फल तो भोगना ही पड़ता है। यह कब सम्भव है कि बुरे कर्मका परिणाम अच्छा हो। उधर सिंहसेनकी रानीने पति-वियोगमें दुखी होकर संसारके भोग-जीवनसे ऊबकर वैराग्य भाव धारण कर लिया। वह संसारकी क्षण-भंगुरतासे शिक्षा ग्रहण कर बनमें श्री आर्यिकाके पास जाकर साधुनी हो गयी। इधर महाराजके पुत्र सिंहचन्द्रके हृदयमें भी वैराग्य-भावके उदय होनेके कारण अपने छोटे भाई पूर्ण चन्द्रको राजा बनाकर उसने सुव्रत महामुनिसे दीक्षा ग्रहण कर ली वे घोरतासे कठिन तपस्यामें लीन हो रहे थे। उन्होंने अनेकों विपत्तियां सहकर भी अपने मनपर नियन्त्रण किया, फिर इन्द्रियों का निग्रह किया, अन्तमें उन्होंने मनः पर्ययज्ञान प्राप्त कर लिया। कुछ दिनोंके बाद उनकी माताने उनके पास आ नमस्कार कर कहा महामुनि! आपको पैदाकर आज मैं धन्य २ हो गई। आज मैं

आपकी मां होनेका गौरव प्राप्त कर कृतार्थ हो गयी। परन्तु आपके अनुज पूर्णचन्द्र आत्म-कल्याणके पवित्र मार्गमें कब अग्रसर होंगे? अपनी आदरमयी माताको सामने देखकर सिंहचन्द्र मुनिका गला भर गया वे गद्‌गद्‌ होकर बोले, "माता, सुनो मैं तुमसे संसारकी विचित्रताकी एक घटना सुनाता हूं जिसे सुनकर माँ तुम चौंक उठोगी, चीख जाओगी। माता, हमारे पिताकी मृत्यु साँपके काटने से हुई थी। वे मरनेके बाद सल्लकी बनमें हाथी हुए। एक दिन वे मुझे मारनेके लिये दौड़ पड़े थे। मैंने पिताके जीव हाथीको समझाया, "गजराज! क्या आप भूल गये। आप अपने पूर्व जन्ममें मेरे पिता थे, मैं आपका वही प्यारा पुत्र हूं। हाय! कितने आश्चर्यकी बात है कि आप स्वयम् पिता होकर अपने प्रिय-पुत्रको मारनेके लिये दौड़ पड़े हैं। मेरे इस प्रकार स्मरण दिलाने पर गजराज चौंक गया। अपने पूर्वजन्मकी स्मृति यादकर उसकी आँखोंसे आँसूकी धारा बहने लगी। वह मूर्तिके समान खड़ा रहा। मैंने उसे जिन धर्मका उपदेश दे पंचाणुव्रत दिये। इसके बाद मेरे पिताके जीव हाथीने प्रासुक भोजन-जल ग्रहणकर व्रतकी पूर्ति करने लगा। एक दिन वह पानी पीनेके लिये नदी तीर गया। किन्तु वह कीचड़में फंस गया। उसने कीचड़से निकलनेकी लाख कोशिश की मगर वह न निकल सका। तब उसने कीचड़में समाधि-मरणकी प्रतिज्ञा की। उसी समय पूर्व जन्मका वैरी श्री मूर्तिका जीव मुर्गा उसके शरीर पर बैठकर उसके जीते जी मांस खाने लगा। यद्यपि हाथीको शरीरमें मुर्गाके मांस खानेसे घोर वेदन होती थी किन्तु, उसने असह्य वेदनाकी रञ्च मात्र भी परवा नहीं की। वह पंच

नमस्कार मन्त्रका स्वाध्याय करने लगा। काल स्वरूप हाथी शान्ति रूपसे मरकर सहस्रार स्वर्गका देव हुआ। धर्म भावनामें ही कल्याण का मार्ग सन्निहित है। वह मुर्गा मरनेके बाद चौथे नरकका बासी हुआ, वहां आराम, शाँतिका नाम कहाँ, दुःखका घोर समुद्र है जिसमें पापी अपने पापका फल भोगते हैं। हाथीके दाँत और मस्तक का मणि भीलके हाथ लगा। उसने उक्त चीज़ धनमित्र सेठके हाथ वेचकर धन प्राप्त किया। धनमित्रने सर्व श्रेष्ठ चीज़ समझकर राजा पूर्णचन्द्रको भेंटमें दे दी। वह अमूल्य चीज़ देखकर फूला नहीं समाया। धनमित्रको खूब धन मिला। उसने हाथी दाँतसे पलंग बनवाया और गजमुक्तासे रानीके गलेका सुन्दर हार। इस समय राजा पूर्णचन्द्र विषय-भोगमें फंसकर अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। संसारमें जीवोंके दुःख भोगनेका यही कारण है। जिसे ज्ञानी जन ही अपने अनुभवसे जानते हैं। यह अन्य जनके लिये संभव नहीं है। माता, यदि तुम उपकार करना चाहो तो कर सकती हो। भोग-विलासमें फंसे हुयें अपने प्रिय पुत्रके अनमोल जीवनकी रक्षा कर सकती हो। कल्याणी मां जाओ, भाई पूर्णचन्द्रको पिताकी सम्पूर्ण कहानी सुनाकर यदि उसे कल्याणके मार्गमें ला सको तो कितना लाभ हो। अपने पुत्र मुनिराजकी बात सुनकर माता राजा पूर्णचन्द्रके राज-भवनमें जा पहुंची। अपनी माताको राजमहलमें देख पर्णचन्द्र आश्चर्यसे उठ खड़े हुए। माताको ऊँचा आसन देकर उन्होंने विनीत शब्दोंमें कहा, "हे माता, तुमने इस पवित्र वेषमें भी अपने पुत्रका स्मरण कर रक्खा है। मुझे नहीं भूल सकी। तुम्हारे पवित्र चरणोंसे यह घर आज पवित्र हुआ। कहो, पुत्रके ऊपर मां की

कौन सो आज्ञा है।" आर्यिकाने शांत पूर्ण भावोंमें कहा, "प्रिय पुत्र! आज मैं तुमसे एक आवश्यक बात कहने आई हूं, ध्यानसे सुनो:—पुत्र, उस घटनाको बीते वर्षों गुज़र गये, तुम्हें याद होगा कि तुम्हारे आदरणीय पिताको मृत्यु सांपके काटनेसे हुई थी। तुम्हारे पिता मरकर हाथी हुए और वह दुष्ट सांप मुर्गा हुआ। एक दिन, हाथीने पानी पीनेके लिए नदीमें प्रवेश किया, दुर्भाग्यसे वह कीचड़में फंस गया। उस मुर्गेने हाथीको जीते ही मास नोच कर मार डाला। उस हाथीके दांत तथा मुक्ता भीलके हाथ लगा उसने एक सेठके हाथ वेंच दिया। सेठके हाथसे तुमने भेंट स्वरूप पायां। आज उसी हाथी दांतका पलङ्ग तुम्हारे राज भवनमें क्रीड़ा-का स्थल बना हुआ है और मुक्ता तुम्हारी रानीके गलेका सुन्दर हार। पुत्र, यही तो संसारकी विचित्रता है, आगे तुम्हारा क्या कर्त्तव्य है तुम स्वयं निर्धारित कर लो।" माताके मुंहसे पूज्य पिताके जीवनकी ऐसी दुर्दशा देखकर राजा पूर्णचन्द्रकी आँखोंसे आंसूकी धारा बह चली। वे फूट २ रोने लगे। उनका अन्तस्थल पितृ-शोकके वियोगमें शोकसे व्याप्त हो गया उसी प्रकार जैसे पर्वतमें अग्नि लगनेसे गर्म हो जाता है। राजाके इस प्रकार करुण-क्रन्दन करते ही उनकी रानी हाहाकार करने लगी। इसके बाद उन्होंने पलंगके पाये, मुक्ताहार, चन्दनादिसे जलाकर खाक कर दिया। इसमें कितनी सचाई भरी हुई है कि मोहके वशीभूत होकर मनुष्य क्या २ नहीं कर गुजरता? मोहका ऐसा अमोघ चक्र होता ही है जिसके नीचे बड़ेसे बड़े सिद्ध, तपस्वी, योगी एवम् मुनिराज फँस जाते हैं तब बेचारे राजा पूर्णचन्द्र किस खेतकी मूली? थे जो

बच सकें। परन्तु, वे भाग्यवानके साथ ही बुद्धिमान थे जिन्होंने तुरन्त ही चेतकर आत्म कल्याणका मार्ग ग्रहण कर श्रावक धर्मके अनुसार अपना जीवन व्यतीत किया। फल स्वरूप वे मरकर महा-शुक्ल नामक स्वर्गके देव हुए। उनकी माता भी कठिन तपस्याकर उसी स्वर्गमें जाकर देव हुई। संसारमें जिसने जन्म धारण किया उसकी मृत्यु निश्चित है। कुछ दिनोंके बाद मनः पर्ययज्ञानधारी महामुनि सिंहचन्द्र तपस्या करके स्वर्ग सिधारे। वे ग्रैवेएकमें देव हुए। पाठक गण! उक्त देवने कहानीका सिलसिला जारी रक्खा उसने कहना शुरू किया:—इस भारतवर्षके सूर्याभपुर नामक नगरमें राजा सुरावर्त राज्य करते थे। उनको यशोधरा नामक पत्नी थी। वह अत्यन्त सुन्दरी थी, तथा सती-साध्वीके साथ सरल-स्वभाव वाली थी। विदुषी यशोधरा मुक्तहस्त होकर दान देती, जिन भग-वानकी पूजा श्रद्धा-भक्तिसे किया करती थी। इस प्रकार वह सर्वदा व्रतादिक कार्यों द्वारा पवित्र जीवन व्यतीत करती थी। कुछ दिनोंके बाद उसके एक पुत्र हुआ जिसका नाम रश्मिवेग रक्खा गया। वह सिद्धसेनके जीवके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं था। एक दिन राजा सुराव्रतने राज्य-शासनसे मुंह मोड़कर अपने पुत्र रश्मिवेगको राजा बनाकर मुनिवेष धारण कर लिया। यद्यपि रश्मिवेग राजगद्दीपर बैठ कर शासन-कार्य करने लगे किन्तु उनके हृदयसे धार्मिक-भाव अभी दूर नहीं हुआ था। एक दिनकी बात है कि धर्मप्राण रश्मिवेग सिद्ध कूट जिन मन्दिरके दर्शनार्थ चले गये। वहांपर हरिचन्द्र मुनिके धर्मोपदेश सुनकर उनके हृदयमें वैराग्यका भाव उत्पन्न हो गया। उसी समय संसारके ऐश्वर्य-भोगोंसे उन्हें घृणा हो गयी। बस फिर

क्या था, उस समय उन्होंने उपरोक्त मुनिराजसे दीक्षा ले ली। संयोगसे वे एक दिन पर्वतकी कंदरामें कायोत्सर्ग धारण किए हुए थे, इसी बीचमें श्रीभूतिके जीवने नरकसे आकर भयंकर अजगर की योनिमें जन्म धारण किया था, उसने तपस्या करते हुये रश्मिवेग मुनिको काट खाया। मुनिराज तो अपने अटूट ध्यानमें लीन थे, उन्हें क्या परवा थी। अन्तमें उनके सारे शरीरमें विष व्याप्त हो गया वे मरकर कापिष्ट स्वर्गमें गये। वहांपर वे आदित्य प्रभ नामक महाद्धिक देव हुए। वहां रहकर उनका समय भगवानकी आराधनामें व्यतीत होता था। अजगर भी मरकर चौथे नरकमें गया वहां घोर दुःख सहने लगा। वहांके नारकियोंने तलवारसे टुकड़े २ कर दिये, खोलती कड़ाहीमें जलाया, कोल्हूमें पेला, गर्म लोहेसे उसे जलाया, वहां नाना प्रकारके कष्ट भोगने पड़े।

वह देव कहता ही गया:—

इसी देशमें चक्रपुर नामक एक नगरमें चक्रयुध राजा थे, उनकी रानीका नाम था चित्रादेवी। उसके वज्रायुध नामक पुत्र था। सिंहसेनका जीव ही वज्रायुध हुआ था। कुछ वर्षोंके बाद राजा चक्रायुधने अपने पुत्र वज्रायुधको राजा बनाकर जिन-धर्मकी दिक्षा ले ली। वे नीतिसे प्रजाके ऊपर शासन रखते थे। इस प्रकार भोग बिलास पूर्ण जीवनसे ऊबकर उन्होंने अपने पिताके पास जाकर मुनिवेष धारण कर लिया। एक दिन वज्रायुध मुनिराज पियंगु नामक पहाड़पर तपस्यामें लीन थे, सर्पका जीव भील हो गया था, उसने बाणसे मुनिराजको स्वर्ग-वासी बनाया। मुनिराजने सर्वार्थ सिद्धका पद प्राप्त कर लिया। वह दुष्ट भील मरकर सातवें नरकमें जा पहुंचा।

इसके वाद वज्रायुधका जीव ही संजयन्त हुआ और पूर्णचन्द्रका जयन्त हुआ। वे दोनों भ्राता वाल्यवस्थामें ही संसारसे उदास हो कर अपने पिताके साथ मुनि हो गये। भीलके जीवने अनेक खराव योनियोंमें जन्म लेकर अत्यन्त वेदना सही- अन्तमें वह भूतरमण वनमें हरिणशृङ्ग नामसे जन्म धारण किया। उसीका जीव पंचाग्नि तपकर विद्युद्दंष्ट्र नामक विद्याधर हुआ है, वही अपने कई जन्मोंका वदला ले रहा है। जयन्त मुनिका जीव तुम हो (धरणेन्द्र)। हे धरणेन्द्र! संजयन्त मुनिराजके साथ इस दुष्ट विद्याधरने अनेक जन्मोंसे अपने वैरका वदला लिया है। इसने मुनिराजको अनेक असह्य कष्टोंसे सताया। मगर धन्य हैं मुनिराज जिनने अनेक जन्मोंके कष्टोंको सहते हुए अपनी सहिष्णुता, निश्छलता, पवित्रता, एवं धीरताका परिचय देकर हिमालयकी समता कर ली है। वे सम्यक्त्वकी महिमा प्रकट करते हुए मोक्षवासी हो गए हैं। धरणेन्द्र! मुनिराज मोक्षवासी होकर आवागमन रहित हो गए हैं। वे अनन्त काल तक यहां, रहकर अपने ज्ञानका प्रकाश फैलाते रहेंगे अतः संसारकी ऐसी स्थिति देखते हुए तुम अपने क्रोधको शान्त करो। इसे दयाकर छोड़ दो। धरणेन्द्रने उसकी (देव) वात सुनकर कहा,—"आपकी प्रार्थना करनेपर मैं इसे छोड़ देता हूं, मगर मैं इसे श्राप देता हूं कि मनुष्यकी योनिमें यह विद्यासे वंचित रहे। इसके वाद श्री धरणेन्द्रने अपने प्रिय भाई संजयन्त मुनिराजके मृतक शरीरकी भक्ति-भावसे पूजा की। फिर उन्होंने अपने स्थानके लिए प्रस्थान कर दिया। अतः अन्तमें हमारी (ग्रन्थकार) विनम्र प्रार्थना है कि श्रीसंजयन्त मुनिराज जिस प्रकार अमर मोक्ष-धामके अधि

वासी हुए उसी प्रकार वे हमें भी उस स्वर्गीय सुखको देवें। सम्यक-ग्यानके समुद्र, जिन भगवानके चरण रूपी कमलके प्रेमी भ्रमर, निर्मल चरित्रधारो श्रीमल्लिभूषण आचार्य कुन्दकुन्दाचार्यकी परम्परामें हुए थे। उनकी कृपा-कोरसे ही भवसागरसे पार किया जायेगा, वे कृपाकर हमें भी अनन्त अक्षय सुख देकर अपनी उदारता दिखलावें ऐसा हमारी प्रार्थना है।

अंजन चोरकी कथा।

(६)

घट २ व्यापी वीतराग प्रभु जगत बीच कहलाते हैं।
उनके चरण-कमलमें श्रद्धासे निज शीस झुकाते हैं॥
किसने निःशंकितमें पाई कहो ख्याति हे वाचक वृन्द?
उसी चोर अंजन की गाथा कहूं स्वपर हित पाठक वृन्द॥

जिनदत्तको धर्म परीक्षा।

इसी भारतके मगध देशके अन्दर, राजगृहनामक एक नगरमें एक धर्मात्मा सेठ रहता था, उसका नाम जिनदत्त था। वह, जैन-धर्ममें बड़ी भक्तिसे विश्वास रखता था। वह श्रावकोंके व्रत करता, ग़रीवोंको दान देता तथा सर्वदा विषयभोगसे दूर रह धार्मिक-जीवन व्यतीत करता था। एक दिन की वात है कि उक्त सेठ चतुर्दशीके पुण्य दिन की आधी रात्रिके समय, श्मशानमें जाकर कायोत्सर्ग

ध्यानमें रहनेका कार्य करने लगा उसी समय, अमित प्रभ और विद्युतप्रभ नामक देव, अपने धर्मको उत्कृष्टता की परीक्षा करने आये। उनमें पहिला जैन-धर्मको मानता था, दूसरा अन्य मतावलम्बी था। परीक्षा लेनेपर, पंचाग्नि तपनेवाले एक तपस्वी अपने ध्यानसे पराङ्गमुख हो गया। इसी बीचमें, वे दोनों, ध्यानस्थ सेठ जिनदत्तके पास पहुंच गये। अमितप्रभने अपने साथीसे कहा, "मित्र! बड़े २ महान् तपस्वी को परीक्षा तो एक तरफ, इसी साधारण गृहस्थ को परीक्षा में असफल सिद्ध कर दोगे तो मैं तुम्हारी बात सत्य मानूंगा। अमितकी बात सुनकर विद्युतप्रभ परीक्षा करनेके लिये, तैयार हो गया। उसने सेठ जिनदत्तके शरीर को भयङ्करसे भयङ्कर कष्ट देकर उन्हें तपसे विचलित करनेकी लाख कोशिश की मगर वे—

"अटल रहे पर्वत सम उस क्षण, तपमें ध्यान लगाकर, ।
कैसे थे वे अटल तपस्वी, योग अखंड जगा कर" ॥

उसी समय, प्रातःकालका समय हो गया। दोनों देवोंने अपना रूप प्रकट कर भक्ति-भावसे उनकी (भेंट) अभ्यर्थना की। उक्त देवोंने सेठ जिनदत्तको आकाश गामिनी विद्या देकर कहा; आप निस्सन्देह विश्वास रक्खें कि आज यह विद्या आपको सिद्ध हो गयी, यदि आप पंच नमस्कार-मंत्र द्वारा, इसे किसी अन्यको देंगे तो उसे भी सिद्धि प्राप्त होगी इस प्रकार कहकर, दोनों देव चले गये, उक्त विद्या पाकर, जिनदत्तकी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं था, उसने अपने मनमें विचार किया कि क्याही अच्छा होता कि मैं अपनी विद्याकी सिद्धिके बलसे अकृत्रिम

चैत्यालयका दर्शन करता। विद्याके प्रभावसे, उसने उसी समय वहाँ जाकर भगवान जिनेन्द्रकी पूजा कर, अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्तकी सच है, ऐसे ही पवित्र दर्शनसे स्वर्ग-मोक्षकी प्राप्ति होती है।

सोमदत्तकी असफलता चोरकी सिद्धि।

सेठ जिनदत्त प्रतिदिन उसी चैत्यालयमें जाकर श्री जिनेश्वरकी आराधना किया करता। एक दिन सोमदत्त नामक मालीने सेठ जिनदत्तसे विनीत शब्दोंमें कहा, "सेठ जी! मैं देखता हूं कि आप प्रतिदिन, प्रातः कालके समय कहां जाते हैं?" सेठने कहा,—"हे माली! मुझे दो देवोंके अनुग्रहसे, आकाशगामिनी विद्याकी सिद्धि हुई है जिसके प्रभावसे मैं प्रतिदिन अकृत्रिम जिनमंदिरमें जाकर, भगवान की पूजा किया करता हूं।" सेठ की ऐसी आश्चर्य-युक्त बात सुन कर मालीने हाथ जोड़ कर कहा,—"सेठजी, यदि, कृपा कर मुझे उक्त विद्याकी सिद्धि करा देते तो मैं भी प्रतिदिन सुगन्धित पुष्प लेकर, भगवानके चरणोंमें चढ़ा कर शुभ कर्मका भागी बनता। क्या आप मुझे वह विद्या देंगे जिसके प्रभावसे मैं भी धर्म-कार्यमें योग दे सकूं?" माली की भक्ति देख कर, सेठने उसे विद्याकी सिद्धि की विधि बता दी। सोमदत्त, कृष्णपक्षके पवित्र चतुर्दशीके दिन, आधीरात्रिके समय, श्मशानमें जाकर विद्याका प्रयत्न करने लगा। उसने सेठके कथनानुसार, वटवृक्ष की डालीमें समस्त विधिवत कार्य द्वारा, साधन करना प्रारम्भ किया। वह पंच नमस्कार का पवित्र मंत्रका जप करने लगा। अब उसको मंत्र-सिद्धिका अन्तिम समय उपस्थित हो गया था, उसी समय

सीका काटनेके समय सेठका शब्द सुन कर, वह कांप गया। उस मायावीने अपने मनमें विचार किया कि जिनदत्तने मेरे साथ शत्रुता की है। इस प्रकार विचार कर, वह वटवृक्षसे नीचे उतर आया। किन्तु, थोड़ी दूरके बाद, उसके मस्तिष्कमें यह बात आयी कि मैं भूल करता हूं, —सेठ जिनदत्त मुझसे किस बैरका बदला लेगा उसे लाभ ही क्या होगा, यदि मेरी जान चली जायगी किन्तु, बारंबार सोचने पर भी, उसके दिमागमें धर्मात्मा जिनदत्तके विषयमें उसको शत्रुता सम्बन्धी बातें नहीं टिक सकीं। सच तो यह है कि उसका हृदय कमजोर था। अनेकों बार साहस कर यह असफल रहा। जो लोग, स्वर्ग-मोक्षके सुख-प्रदाता जिनेन्द्र भगवानके पवित्र वचनोंके ऊपर, अपनी श्रद्धा नहीं रखते वे संसारमें अपनी कोई मनोभिलाषा पूर्ण नहीं कर पाते।" प्रिय पाठक गण! जिस आधीरात्रिके समयकी घटनाका वर्णन किया गया है ठीक उसी समय नगरमें एक और ताज़ी घटना हो गयी जिससे पहली घटनाका सम्बन्ध है, वह यों है। उसी नगरमें, माणिका नामक एक वेश्या रहती थी, उसी रात्रिके समय, वेश्याने अपने चाहनेवाले प्रेमी अञ्जन चोरसे जोर देकर कहा, 'मैं उसी समय, तुम्हें अपना सच्चा प्रेमी मानूंगी जिस समय, तुम श्री कनकवती महारानीके गलेका सुन्दर अतुलित बेश कीमती हार लाकर मेरे गलेमें डालोगे। तुम मेरी प्रतिज्ञा अटल समझो उसी हारके ऊपर हमारे साथ तुम्हारा प्रेम-सम्बन्ध रहेगा या विच्छेद होगा।" वह चोर क्या करता? लाचार होकर उसने रानीके महलमें प्रवेश कर उसके गलेसे हार निकाल कर तेजीसे प्रस्थान किया। किन्तु, सौभाग्यसे

या दुर्भाग्यसे पहरेदारोंने उसके हाथमें चमकता हुआ हार देख कर उसका पीछा करना शुरू किया। अंजन चोर जो छोड़कर, भाग चला। उसके पीछे २ पहरेदार उसे पकड़नेके लिये, दौड़ पड़े। वह रानीका हार लेकर, सफाईसे अनेकों पहरेदारोंको धत्ता वता कर, निकल जाता, परन्तु, उस हारके प्रकाशने पहरेदारोंको सजग कर दिया, वह (चोर) दौड़ते दोड़ते थक गया था, पहरेदार उसे पकड़ लेना चाहते थे, इतनेमें उसने हारको पीछे फेंक कर लम्बी दौड़ लगाई। इतनेमें पकड़ने वाले हार उठानेमें ही फँसे रहे, तब तक अंजन चोर बहुत दूर निकल गया। किन्तु, पहरेदारोंने उसका पीछा करनेसे मुंह नहीं मोड़ा। वह दौड़ता हुआ श्मशानमें पहुंच गया। उसने उक्त मालीको वहाँ पर विद्या सिद्धिके लिये उत्कंठित पाया। मालीके भयप्रद साधन देखकर, अंजन चोरका होश हिरन हो गया। उसने डरते हुए मालीसे पूछा,—"तुम क्या कर रहे हो ?" उक्त मालीने अपनी समस्त बातें उससे कह सुनायीं। अंजन चोर, मालीको आश्चर्य-युक्त बातें सुन कर, अपने मनमें प्रसन्न होकर विचार करने लगा,—"मेरे लिये यह अच्छा मौका है कि मैं सिपाहियोंके हाथसे न मर कर धर्म-कार्यमें ही अपना प्राण छोड़ूं ? क्यों कि निर्दई सिपाहियोंके हाथसे प्राण-रक्षा असम्भव है, तब इस पुण्यकार्यमें, अपनी जान क्यों न दे दूं ? इस प्रकार सोच कर, उसने मालीसे निवेदन किया,—'हे भाई, कृपाकर अपनी तलवार मुझे दो, मैं भी अपने भाग्यको आजमाना चाहता हूं।" मालीने उसे तलवार दे दी। वह तलवार लेकर वटके वृक्ष पर चढ़ गया। वह माली द्वारा कथित मन्त्र भूल गया। तब उसने मन्त्रके

ऊपर विश्वास प्रकट कर निर्भय होकर कहा,—"मैं सेठके मन्त्रको प्रमाण देता हूं, ऐसा कह कर अंजन चारने तलवारके एकही वारमें, समूचे सींके काट दिये। उसी समय, आकाशगामिनी देवीने उपस्थित होकर उससे कहा,—प्रभो! मुझे आज्ञा दीजिये, मैं पालन करनेके लिये तैयार हूं। उसकी प्रसन्नताका क्या ठिकाना था? उसने देवीसे कहा,—"मेरू पहाड़पर जहां जिनदत्त जिन भगवान को पूजा कर रहे हैं, मैं उसी स्थान पर जाना चाहता हूं।" उसके कहते ही देवीने अंजन चोरको वहाँ पहुंचा दिया जहाँ सेठ जिनदत्त जिन भगवान की पूजामें तल्लीन थे। "जिन-धर्मके प्रभावसे असंभव कार्य भी संभव होता है। अञ्जन चोरने सेठके पास पहुंच कर, भक्ति-भावसे प्रणाम कर विनम्र शब्दोंमें निवेदन किया, "दयानिधे! आप की कृपासे मैंने आकाश गामिनी विद्या की प्राप्ति कर ली, किन्तु, दयामय, मुझे कृपाकर कोई ऐसा मंत्र बताइये जिससे में भवसागरको पार कर सिद्धि प्राप्त कर लूं।"

अन्तिम परिणाम।

उक्त चोरकी विनम्र वाणी सुनकर, दूसरोंकी भलाई करने वाले सेठ जिनदत्तने उसे चारण ऋद्धिके धारण करने वाले मुनिराजसे दिक्षा दिलाई। अंजन चारने कैलाश पर्वतपर जाकर अपनी कठिन तपस्या द्वारा घातिया-कर्मोंका नाश कर, केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया। कुछ दिनोंके बाद, उसने अपने अघातिया कर्मोंका नाश कर अनन्त गुणोंका सिन्धु मोक्ष-पदकी प्राप्ति कर ली। पाठकगण! जैसे अंजन चोर, सम्यग्दर्शनके निःशंकित अंगका पालनकर, अपने

कर्मोंका नाश कर निरञ्जन हुआ उसी प्रकार श्रेष्ठ जनोंको चाहिए कि वे निःशंकित अंगको पूर्णरूपसे पालन करें।

श्रीमल्लिभूषण भट्टारक मूल संघमें हुए हैं। वे सम्यग्ज्ञान, सम्यक चरित्र और सम्यग्दर्शनके समान सर्वश्रेष्ठ अनमोल रत्नोंसे विभूषित थे। वे ज्ञानके भण्डार थे। उनके शिष्यका नाम सिंहनन्दी मुनि था। वे मिथ्यात्वरूपी पर्वतको चूर-चूर करनेमें वज्रकी समता रखते थे। वे अपूर्व विद्वान् थे साथ ही अन्य मतोंके सिद्धांत का विद्वतासे प्रतिबोध करते थे। उनकी उपमा सूर्य्यसे दी जा सकती है। जो श्रेष्ठ पुरुषरूपी कमलको प्रफुल्लित करता है। वे चिरञ्जीवी रहें। उनकी कीर्ति नाशमान संसारमें सर्वदा अक्षय रहे। यही हमारी हार्दिक अभिलाषा है।

अनन्तमतीकी कथा

(७)

पूज्य पिताने जब विनोदमें उसे दिया था शीलाचार।
उसने दृढ़तासे पालन कर, सिद्ध किया निज सत्य विचार॥
श्री अर्हन्त पवित्र चरणमें, सादर शीस झुकाता आज।
रोचक कथा अनन्तमतीकी, लिखता हूं मैं सुखका साज॥

कन्या आजन्म कुमारी रही।

भूमण्डलमें किसी जमानेमें अंग देश एक प्रसिद्ध देश रहा है, उसमें वसुवर्धन नामक राजा राज्य करते थे। उन दिनों उस देश-

की राजधानीका नाम चम्पापुरी था। लक्ष्मीमती उन राजाकी रानी थी। उसके प्रियदत्त नामक पुत्र था। रानीका सरल स्वभाव अनुकरणीय था, वह बड़ी धर्म-परायणा स्त्री थी, जैन धर्मपर उसकी बड़ी श्रद्धा थी। अतः माताके धार्मिक जीवनका प्रभाव प्रियदत्तके ऊपर पड़े बिना कैसे रह सकता था। अतः वंश परम्पराके अनुसार प्रियदत्तकी स्त्री अंगवती भी पतिके अनुकूल धर्ममार्गमें चलने वाली उदार स्त्री थी। उसी अंगवतीकी कन्याका नाम अनन्तमती था, वह गुणोंकी खान तथा सुन्दरी थी। एक दिनकी बात है कि अष्टाह्निकाके पवित्र शुभ अवसरपर, प्रियदत्तने धर्मकीर्ति नामक महामुनिके पास जाकर, केवल आठ दिनोंके लिये, ब्रह्मचर्य रहनेका व्रत ले लिया। इसीमें उसने अपनी कन्या अनन्तमतीको भी ब्रह्मचर्यव्रत दे दिया। यद्यपि उसने विनोद-भावमें आकर ऐसा किया किन्तु, वही विनोद अन्तमें जाकर ठीक निकला। अपने पूज्य पिताके दिये हुए ब्रह्मचर्य व्रतने कन्या अनन्तमतीके मनपर अपना प्रभाव दिखलाया। जब, प्रियदत्तने अपनी कन्याको विवाहके अनुकूल देखी तब उसने उसके विवाहकी तैयारी शुरू कर दी। इधर, घरमें, धूमधाम देखकर अनन्तमतीने अपने पितासे सादर निवेदन किया, "पिताजी, आपने मुझे ब्रह्मचर्य व्रतसे दीक्षित कर दिया है तब विवाहकी कैसी तैयारी! कन्याकी बात सुनकर प्रियदत्त चौंक उठे। वे कहने लगे—पुत्री! क्या मैंने तुम्हें ब्रह्मचर्य व्रत दिलाया था, मैंने तो विनोद किया था। क्या तू उसे ही सच मानती है? कन्याने निर्भीकता पूर्वक जवाब दिया,—"आप क्षमा करें, धर्म और व्रत विधानमें हंसीकी गुञ्जाइश कहां?" पिताने बेबशीमें कहा,—"मेरे

'पवित्र कुलको प्रकाशित करने वाली कन्या, अच्छा मैंने माना कि मेरे विनोदमें दिया हुआ व्रत सत्य है तो मैंने आठ दिनके लिए दिलाया था, वेटी तुम तो अपने विवाह करनेसे इनकार कर रही हो।' पिताजी, आपका कहना ठीक है, मैं मानती हूं कि आपने आठ दिनोंके लिये व्रत दिलाया था, किन्तु आपने या आचार्यने उस समय मुझसे व्रतके समयके सम्बन्धमें क्यों नहीं कहा था? पिताजी मैं आजीवन ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करूंगी। इस जन्ममें मेरा विवाह होना असम्भव है। कन्याकी भीष्म-प्रतिज्ञाके सामने पिता किं-कर्तव्य विमूढ़ हो गया। लाचार होकर उसने कन्याके धार्मिक पवित्र जीवन वितानेके लिये अच्छी २ पुस्तकोंका प्रवन्ध कर दिया जिस-से उसका जीवन शान्ति पूर्वक व्यतीत हो। अनन्तमती प्रसन्नता से शास्त्रोंके स्वाध्यायमें लीन होकर पवित्र जीवन विताने लगी। इस प्रकार अनन्तमतीका वाल्यकाल समाप्त हो गया। उसने यौवन के प्राङ्गणमें प्रवेश किया। उसके रोम रोमसे जवानी टपकने लगी। योंतो वह सुन्दरी थी ही, किन्तु मस्तानी जवानीने उसे देवकन्या-से अधिक सुन्दरी वना कर अपनी सत्ताका परिचय दिया। उसकी सुन्दरताका वर्णन करना उसके साथ मखौल करना है। उसके मुखके सौन्दर्यके आगे चन्द्रमा लज्जित हो जाता था, कवियोंने सुन्दरता के वर्णनमें कमलसे आंखोंको उपमा दे रखी है, किन्तु अनन्तमतीके आगे उसकी उपमा ठीक नहीं जँचती। अनन्तमतीके सौन्दर्यके आगे स्वर्गलोककी सुन्दरियाँ फीकी लगने लगीं।"

विपत्तिके चंगुलमें।

एक दिनकी वात है कि अनन्तमती अपनी फुलवाड़ीमें मनो-

रञ्जन करनेके लिये, झूला झूल रही थी। इतनेमें कुण्डल मण्डित नामक विद्याधर अपनी स्त्रीके साथ वायुयानपर जा रहा था। उसको नजर झूलेपर झूलती हुई अनन्तमतीके ऊपर पड़ी। वह अनन्तमतीकी सुन्दरतापर मुग्ध हो गया। किन्तु उस समय उसकी स्त्री बाधक बन रही थी, तो वह उसे अपने विमानपर जबर्दस्ती बैठा कर अपना मतलब गाँठता। वह शीघ्रतासे विमान घर ले गया, अपनी स्त्रीको विमानसे उतारकर वापस लौटा, किन्तु उसकी स्त्री अपने पतिके मनकी बात ताड़ गई। इधर विद्याधर विमान लेकर चला, इधर उसकी स्त्रीने उसका पीछा किया।

कुंडल मंडित अनन्तमतीको अपने विमानपर जबर्दस्ती बैठा कर ज्योंही चला त्योंही उसकी नजर अपनी स्त्रीके ऊपर पड़ी, वह घबड़ा गया। कारण, उसकी स्त्रीके नेत्र क्रोधसे अंगारे बरसा रहे थे। वह समझ गया कि अब खैरियत नहीं। विद्याधरने अनन्तमतीको पर्णलघ्वी नामक विद्याधरके हवाले कर अपनी जान बचाई। घर जाकर वह अपनी निर्दोषिताका प्रमाण पेश करने लगा उसने अनन्तमतीके सम्बन्धमें अपनेको अपनी स्त्रीके सामने निर्दोष सिद्ध कर दिया।

भीलराजकी बदमाशी।

उक्त विद्याने अनन्तमतीको घोर जंगलमें छोड़ दिया। वह निर्जन जंगलमें अकेली रोने लगी। इतनेमें शिकार खेलता हुआ एक भीलराज पहुंच गया। वह बुरी वासनाके विचारसे अनन्तमतीको अपने घर ले गया।

अनन्तमतीके जीमें जी आया। उसने मनमें निश्चय कर लिया कि अब मेरा छुटकारा हुआ। मैं अपने घर पहुंच जाऊंगी। किन्तु वह भ्रममें थी, कुएँ से बचकर खाईं में जा गिरी। यदि एक सांपनाथ था तो दूसरा नागनाथ। दुष्ट भीलराज उसे अपने घर ले गया, वहां उसने इस प्रकार कहना शुरू किया,—"देवी, तुम कितनी भाग्यवती हो कि मेरे समान एक राजा तुम्हारे सौन्दर्यका प्यासा बना हुआ है। मैं तुम्हारे चरणोंपर गिरकर तुमसे यही वर-दान मांगता हूं कि मेरे साथ भोग कर आनन्द प्राप्त करो। मैं तुम्हें अपनी प्रधान रानी बनाऊंगा। मेरे ऊपर दया कर अपने रूपका मजा चखने दो।" अनन्तमती उसकी दुष्टता भरी बात सुनकर, फूट २ कर रोने लगी। किन्तु उसका रोना उस घोर जंगलका रुदन था जहांपर किसी की सुनवाई नहीं होनेकी। सच पूछिये तो वहाँके लोग मनुष्य जातिके कट्टर दुश्मन थे। सच है पापियोंके हृदयमें दयाका नाम तक नहीं रहता। अनन्तमतीके ऊपर उसने साम, दाम और दण्ड-नीतिसे काम लेना शुरू किया। अब अनन्त-मतीने अपने मनमें दृढ़ निश्चय कर लिया कि इस दुष्टके आगे नम्रता, अनुनय-विनयसे काम चलनेका नहीं, अतः उसने भीलराज को फटकार बतायी। सती-साध्वीके नेत्रोंसे क्रोधकी चिनगा-रियां निकलने लगीं। किन्तु उस राक्षसके आगे तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा। उस दुष्टने अनन्तमतीके साथ बलात्कार करनेका निश्चय किया। उसी समय अनन्तमतीके शीलके प्रभावसे प्रभावित होकर वन-देवीने आकर उसकी रक्षा कर ली। उक्त देवीने उसे उसकी दुष्टताका मजा चखाकर क्रोधपूर्ण शब्दोंमें कहा,—"नरा-

धम ! क्या तू इस देवीको नहीं जानता कि यह पवित्र आत्मा है। दुष्ट ! स्मरण रख कि यह संसार भरमें महान् देवी है, यदि इसके साथ छेड़खानी की तो तेरी खैरियत नहीं।" बन-देवी इस प्रकार उसे धमकाकर चली गयी। भीलराज डर गया। उसने देवी के डरके मारे, अनन्तमतीको एक सेठके हाथों सुपुर्द कर कहा, "इसको घरपर पहुंचा देना।" साहूकार राजी हो गया किन्तु वह भी पापी था। वह अनन्तमतीके समान दुर्लभ-सुन्दर स्त्री पाकर फूला नहीं समाया। उसने अपने मनमें बिचार किया कि देखो, बिना प्रयास किये ही अपूर्व सुन्दरी हाथ लगी। यदि, यह मेरा कहना मान ले तब तो ठीक है नहीं तो यह मेरे चंगुलसे भाग कर कहाँ जायगी।

विकारीके जालमें

इस प्रकार अपने मनमें बुरा बिचार कर उसने धृष्टताके साथ अनन्तमती से कहा, "देवी, तुम्हारे भाग्यकी क्या सराहना की जाय एक दुष्ट राक्षसके हाथसे तुम्हारा छुटकारा हुआ है। मेरे पास आकर तुम्हारा भाग्योदय हो गया। भला! कहां तुम्हारा चाँद सा मुखड़ा और कहाँ भयङ्कर भील, नर-पिशाच ! मैं, अपने भाग्यको किस प्रकार सराहूं धन्य है मेरा भाग्य जिसने तुम्हारे समान देव-दुर्लभ सुन्दर स्त्री पाई है। सच है, बड़े भाग्यसे सुन्दर स्त्री मिलती है। तिसपर, तुम्हारे समान स्त्री-रत्नका पाना महाभाग्यका प्रधान लक्षण है, देवी ! मैं अनन्त धन, सुख, वैभवका स्वामी हूं और तुम विश्व विदित अपूर्व सुन्दरी। मैं तुम्हारे चरणोंका सेवक बनना चाहता हूं, यदि तुम मुझे अपना लो, अपने हृदयके एक कोनेमें मुझे

वास-स्थान दो. तब तुम देखोगी कि तुम्हारे साथ ही मेरा जीवन-कृत कृत्य हो जाता है कि नहीं। उधर, अनन्तमती अपने कोमल निष्कलंक हृदयमें दुष्टोंके हाथोंसे अपने छुटकारेकी बातपर बिचार करने लगी।—मैं अपने पुज्य पिताके पास पहुंच जाऊँ गी। ये बड़े भलेमानुप सज्जन हैं, अब डरनेको कोई बात नहीं। वह इसी प्रकार ख्याली पोलाव पका रही थी। सच है जो लोग सदाचारी होते हैं वे संसारको उसी दृष्टि-कोणसे देखते हैं। बुरे आदमी भी संसारको उसी पैमानेसे तौलते हैं। अतः निर्बोध अनन्नमती जिसे देखती उसे ही सत्पात्र समझती, उसके हृदयमें पाप की छाया तक नहीं थी, तब वह संसारको पापी कैसे समझती जब कि यह उसका नाम तक नहीं जानती थो।" साहूकारकी वासना भरी बात सुनकर, उसने विनीत शब्दोंमें कहा,—"मान्यवर, मैं आपके पास आकर अपनेको सुरक्षित समझती रही। मैं जान गयी थी कि क्या हुआ एक पिता घर पर हैं तो मेरी मुसीबतके समय आप भी मेरे लिए दूसरे पिताके समान थे। मैं समझती थी कि अब मेरे कष्टोंका अन्त हुआ, मैं आजादोके साथ अपने घर पहुंच जाऊँगी। किन्तु, आपके कामुकता-युक्त पाप-पूर्ण प्रवचनने मेरे सामनेकी पृथ्वीको हिला दिया, महाशय!

"मन मलीन तन सुन्दर कैसे।
विप रस भरा कनक घट जैसे॥

की उक्ति चरितार्थ कर रहे हैं। मैं किसपर विश्वास करूँ? आपको मैंने रक्षक समझा था किन्तु देखती हूं कि मेरा रक्षक ही भक्षक बन गया है। मुझे क्या पता था कि आप भी छिपे रुस्तम

ब्रह्मदत्तको फंसानेके लिये व्यंतर केले और नारंगी लाकर भेंट करता है। महाराज उन्हें देखकर प्रसन्न होते हैं और ऐसे फल कहां होते हैं वहां के लिये प्रस्थान करते हैं।
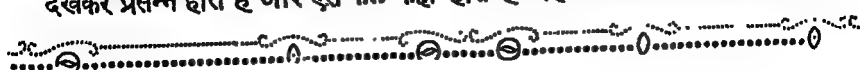
निकलोगे। मुझे अफसोस हो रहा है कि तुम्हारे समान सज्जन इस प्रकार नीचताकी बात करें। ठीक है तुम चमकते हुए उस पीतलके समान ही जो बाहरी चमक-दमकमें सोनाको मात करता है, किन्तु, सोनाके सामने वह नकली पीतल साबित होता है। अतः तुम बाहरसे देखनेमें किस प्रकार अच्छे आदमी जान पड़ते थे किन्तु बगुला भगत बन कर अपना परिचय दे रहे हो। तुम्हारी विड़ाल-भक्ति, बनावटी भेप, निन्दाके योग्य है। महाशय, मैं तुम्हारे चरित्र देख कर निश्चय पूर्वक कहती हूं कि तुम्हारा धन, ऐश्वर्य, भोग विलासके साधनको धिक्कार है। लानत है तुम्हारे धन-वैभव पर; लाखोंबार धिक्कार है तुम्हारे वंशको जिसमें जन्म लेकर नीचताका परिचय दे रहे हो। मैं तुझे घृणाकी नजरोंसे देखती हूं। तुम्हारे ऐसे ही बगुला भक्त भोलीभाली सूरत बनाकर सीधे सादे लोगोंमें अपनी कामुकताका सब्ज बाग फैलाते हैं। वह मनुष्य नहीं है किन्तु मनुष्य के रूपमें राक्षस हैं जो धोखा देकर विश्वासघात करता है। अपनी हृदय कलुषिताका परिचय देता है। वह पापी है, नर-पशु है और है घृणाका पात्र जिसके देखनेसे पाप लगता है, जिसके नाम लेनेसे पापका भाजन बनना पड़ता है और उस अधम नर-पिशाच को जितना धिक्कारा जाय थोड़ा है। दुष्ट, मैं नहीं जानती थी कि तू ऐसे ही धूर्त बदमाश आदमियोंमें है जो माया-जाल रचकर बे-गुनाह, सच्चरित्र आत्माओंको अपने मायाजालमें फँसाकर अपने पापी कलुपित हृदयका परिचय देते हैं। इस प्रकार उसकी निन्दा कर अनन्तमती चुप हो रही। उसने उस दुष्टसे अधिक समय तक बातचीत करना उचित नहीं समझा। वह साहूकार अनन्तमतीकी

ओजपूर्ण स्पष्ट बातें सुनकर भौचक्का सा हो गया। सती-साध्वीके तेजके आगे उसे बोलनेका साहस नहीं हुआ, वह सहम गया। किन्तु उस दुष्टने अनन्तमतीको कामसेना नामक कुटनीके पंजेमें फंसाकर अपने क्रोधका बदला लिया।

राजाके पंजेसे देवीने पुनः रक्षा की।

मनुष्यको अपने कर्मका फल भोगना ही पड़ता है। उसकी गति विचित्र है। 'कर्म लेख को मेटन हारा' की उक्ति ठीक ही है। उधर कुटनीके फेरमें पड़कर, अनन्तमतीके कष्टकी हद हो गयी। कुटनीने उस सतीके सामने अनेक प्रकारके प्रलोभन दिखलाये, उसे सतानेमें कसर नहीं रखी। वह चाहती थी कि अनन्तमतीको पथ भ्रष्ट कर दें, किन्तु वह सती स्त्री थी। उसके शील-व्रतसे खिलवाड़ करना आगसे खिलवाड़ करना था। उस कुटनीकी लाख कोशिश करनेपर भी अनन्तमती सुमेरुगिरके समान अटल बनी रही, उसके सतीत्वको डिगाना असम्भव था। यह सच है कि जो संसारी दुःखोंसे घबड़ाकर पथ भ्रष्ट हो जाते हैं किन्तु जो सदाचार पथके पथिक हैं उन्हें पथ भ्रष्ट करना लोहेके चने चबाने हैं। जब कुटनी अपने प्रयत्नमें असफल रही तब उसने अनन्तमतीको सिंहराज नामक एक व्यभिचारी राजाके हाथमें सौंप दिया। हाय, किस कुघड़ीमें वह उत्पन्न हुई थी कि जहां-जहां जाती वहां वहां दुष्टात्माओंसेही काम पड़ जाता है। पापी सिंहराजने अनन्तमतीके साथ दुराचार करनेका विचार प्रकट किया, किन्तु सती साध्वी अनन्तमती अपने सत्पथसे विचलित नहीं हुई। जब उस दुष्टात्मा

की इच्छा पूर्ण नहीं हो सकी तब उसने बलात्कार करनेकी कुचेष्टा की किन्तु सतीके सतीत्वको लूट लेना क्या खेल है? फिर किसके बाजूमें ताकत है कि उसे बिगाड़ सके। जिस समय उस दुष्टने सतीके सामने अपना पैर बढ़ाया, उसी समय वनदेवीने वहां प्रकट हो डपट कर कहा, "पापी, संभल जा, अगर सतीसे छेड़खानी की तो तेरा नाश निश्चित है। देवी उसे दण्ड देकर चली गयी। देवीका भयङ्कर स्वरूप देखते ही सिंहराजका होश हिरण हो गया। उसका कलेजा थर-थर कांपने लगा, उसे देवीके जानेकी खबरतक नहीं थी। देवीके चले जानेके बाद उसे ज्ञान हुआ। उस दुष्टने अनन्तमती-को एक घोर जङ्गलमें छोड़ देनेके लिये अपने सेवकको आज्ञा दी।

पुनः जंगलमें।

अनन्तमती घोर जंगलमें सोचने लगी कि कहां जाऊं? उसे रास्ता मालूम नहीं था। अन्तमें वह जङ्गलका फल खाती हुई पंच परमेष्टीकी आराधना कर अनेक जङ्गल-पहाड़ोंको पार करती हुई अयोध्या नगरीमें जा पहुंची। वहांपर उससे पद्मश्री नामक आर्यिकासे भेंट हो गई। उस आर्यिकाने अनन्तमतीका परिचय पूछा। उसने आप बीती कह सुनाई। आर्यिका उसकी आत्म-कहानी सुनकर बहुत दुःखी हुई, किन्तु उसने अनन्तमतीको सती शिरो-मणि समझकर अपने पास रख लिया। अच्छे लोगोंके लिये परो-पकार ही व्रत है।

पिता-पुत्री सम्मेलन।

प्रिय पाठकगण! प्रियदत्त अपनी कन्याके गुम हो जानेके दुखद

समाचारसे अत्यन्त दुखी हुआ। उसने पुत्रीके वियोगमें घर-द्वारसे वैराग्य धारण कर लिया। सच है जब मन दुखी हो जाता है तब घर भी श्मशानके समान भयङ्कर लगता है। उसके सामने सारा संसार सूना दिखाई देने लगा, घरपर एक क्षणका रहना भी उसे वर्ष मालूम होने लगा जब उसकी तबीयत घरपर नहीं लगी तब वह घरसे निकल पड़ा। लोगोंके लाख समझाने-बुझानेपर भी उसने अपना दृढ़ विचार नहीं छोड़ा तब परिवारके लोग उसके साथ हो लिये। सभी अनेक सिद्ध क्षेत्रों तथा अतिशय क्षेत्रोंकी यात्रा करते हुए अयोध्या नगरीमें पहुंच गये। वहां प्रियदत्तका साला जिनदत्त रहता था। उसने बड़े प्रेमसे प्रियदत्तकी आवभगत की। जिनदत्त ने अपने वहनोईसे परिवारका कुशल-समाचार पूछा। उसने अनन्त-मतीके सम्बन्धमें सारी घटना कह सुनायी, जिनदत्त अत्यन्त दुःखी हुआ। किन्तु कर्म-फलके आगे सब लाचार हो गये। दूसरे दिन एक ऐसी घटना घटी जिसने पिता-पुत्रीके साथ सम्मेलन करा दिया। वात यों हुई,—जिनदत्तकी स्त्रीने पद्मश्री आर्यिकाके पास रहने वाली स्त्री (अनन्तमती) को भोजन करने तथा चौक पूरनेके लिये बुला भेजा। अनन्तमती चौक पूर कर चली गई। इतनेमें प्रियदत्त अपने सालेके साथ जो जिनालयमें दर्शन करनेके लिये गया था—लौटकर जिनदत्तके घर पर चौक पूरा देख कर—उसे अपनी प्रिय कन्या अनन्तमतीकी याद हो गई। वह फूट फूट कर रोने लगा, उसने कांपते हुए स्वरमें कहा, "जिसने यह चौक पूरा है उससे भेंट करा दो।" उसका साला अपनी स्त्रीसे पता पूछ कर पद्मश्री आर्यिकाके पास जा पहुंचा। वह अनन्तमती

को लेकर अपने घर वापस आया। अपनी कन्या अनन्तमतीको देखकर पिताका गला भर आया। बहुत दिनोंके बाद पिताने पुत्री-को देखकर उसे छातीसे लगाया। प्रियदत्तने बड़े प्रेमसे अपनी पुत्री का समाचार पूछा। कन्याने सिसक २ कर आप बीती कह सुनाई। अनन्तमती अपने प्रिय पिताकी गोदमें बैठकर अपनी दुःख पूर्ण कहानी कहने लगी। प्रियदत्त उसकी कष्ट-कथा सुनकर काँप उठा वह आश्चर्य करने लगा कि उसकी कन्याने असह्य कष्ट सहन कर भी कैसे सतीत्वकी रक्षा कर ली। अन्तमें उसने अपनी कन्यासे मिलकर अपने हृदयमें आनन्दका जैसा अनुभव किया वह शब्दों द्वारा वर्णन नहीं हो सकता। उधर जिनदत्त अत्यन्त प्रसन्न हुआ उसने इस खुशीमें जिनेश्वरका रथ निकलवानेका आयोजन किया सबको सम्मानित कर दान दिया। इस प्रकार अपनी कन्यासे मिल कर प्रियदत्तने अपनेको धन्य २ समझा। उसकी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं था।

वैराग्य-धारण

अब प्रियदत्त घर चलनेके लिये तैयार हो गए। उस समय उन्होंने अपनी कन्यासे घर चलनेकी बात कही। अनन्तमतीने हाथ जोड़कर पितासे निवेदन किया, "पूज्य पिताजी! मैंने संसारकी लीलाएं देखी हैं, हाय, उन्हें देखकर मेरी आत्मा कांप उठती है। पिताजी! संसारी कष्टोंको देखकर मैं डरती हूं, अतः आपसे सादर आग्रह करती हूं कि आप मुझे घर चलनेके लिए न कहैं—मैं आपसे प्रार्थना करती हूं कि मुझे जैन-धर्ममें दीक्षित होनेकी आज्ञा दीजिये, बस, आपकी प्रिय पुत्रीकी यही मनोभिलाषा है। प्रियदत्त,

अपनी कन्याकी बात सुनकर, सहम गये उन्होंने लड़खड़ाती हुयी जबानमें कहा। पुत्री! तुम्हारा कोमल शरीर, कैसे कठिन कष्टोंको सहन करेगा? दीक्षा लेनेपर अत्यन्त कष्ट सहन करने पड़ते हैं जिन्हें तुम नहीं सह सकोगी। अतः कुछ दिनों तक मंदिरमें रहकर साधना करो, इसके बाद, तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण हो जायगी। यद्यपि प्रियदत्तने कन्याको प्रेम-वश दीक्षा लेनेसे रोका, किन्तु अनन्तमतीके रोम २ में वैरागयका भाव व्याप्त हो गया था। उसने गृह-परिवार, माता-पिताकी ममतापर ठोकर मारकर पद्मश्री आर्यिकाके पास जाकर दीक्षा लेली। उसने दृढ़ताके साथ तपस्या करनी शुरू की। वह कठिनसे कठिन कष्ट धैर्यके साथ सहती। लोग, उसके कठिन तपको देखकर आश्चर्य करते। उसने आजीवन दृढ़तासे अपना व्रत पालन किया। आखिर वह अमर ज्योति, अपनी प्रभा छिटकाती हुई सन्यास मरण द्वारा सहस्रार स्वर्गमें जाकर देव हुई। वह स्वर्ग में भी नये २ रत्नाभूषण धारण करती है। अनेकों देवाङ्गनायें उसकी सेवा करती हैं उसके सुख तथा ऐश्वर्यकी कोई सीमा नहीं है। सच है जिस समय पुन्योदय होता है, उसके प्रभावसे मनुष्य क्या २ सुख नहीं पाता? यद्यपि अनन्तमतीके पिताने हंसीमें उसे ब्रह्मचर्य व्रत दे दिया था, उसने अटल-भावसे रहकर उसका पालन किया। उसने संसारके सुखोंमें तनिक लालच नहीं किया। उसने अपने उग्र तपके प्रभावसे स्वर्ग-सुख प्राप्त किया। वहांपर उसका समय जिन भगवानकी आराधनामें व्यतीत होता है। अनन्तमती सदृश सती-शिरोमणि हमारी भलाई करे यही हार्दिक प्रार्थना है॥

उद्यायन राजाकी कथा

(८)

जिन भगवान और जिनवानी जगत श्रेष्ठ कहलाते हैं।
जैन मुनीश्वरके चरणोंमें, नमस्कार कर जाते हैं॥

कच्छ देशके रौरवक नामक नगरमें, राजा उद्यायन राज्य करते थे। वे प्रजाके ऊपर, सात्विक भावनाओंसे प्रेरित हो कर न्यायतः शासन करते थे। वे दान देनेमें एक ही थे, उनकी दृष्टि सम्यक थी तथा श्रीजिनेश्वरके भक्ति-भावमें सदा रहते थे। वे प्रजाको प्रेमकी दृष्टिसे देखा करते थे, उनका अधिकांश समय, धार्मिक-भावनाओं तथा प्रजा रञ्जनमें व्यतीत होता था। उनकी प्रभावती नामक धर्मशीला रानी थी। वह भी अपने पतिके पथका अनुगमन करती थी, वह सर्वदा धर्म प्रवृत्तियोंमें संलग्न रहती थी इसी तरह,राजा उद्वायन शांति-सुखके साथ अपना धार्मिक जीवन व्यतीत करते थे। चिन्ता तो उन्हें छू नहीं गई था। वे अजात शत्रु थे। यानी उनका जीवन हर पहलूसे शांतिमय जीवन था।

इन्द्रकी प्रशंसापर देवने परीक्षा ली

एक दिनकी बात है कि सौधर्म स्वर्गलोकके इन्द्रने अपने भरे दरबारमें धर्मोपदेश देना प्रारम्भ किया वह यों है:—देवो, यदि संसारमें कोई सच्चे देव हैं तो अरहन्त भगवान हैं, वे समस्त दोषोंसे परे हैं उन्हें, इर्षा, द्वेष, क्रोध, मत्सर, भूख, प्यास, जन्म मरण, भय आदि जो संसारकी व्याधियां हैं उन्हें कुछ नहीं कर सकतीं। वे ही

संसारी जीवोंके दुःखोंके त्राता हैं। वे ही सत्य धर्म, उत्कृष्ट क्षमा, मार्दव, आर्यव, आदि दश लक्षणोंसे युक्त हैं। वे गुरु निर्ग्रन्थ हैं। उनके पास परिग्रह फटकने नहीं पाता। वही भगवान क्रोध, मान, माया, लोभ, राग और द्वेषसे निर्लिप्त हैं। अतः सच्ची श्रद्धा ही जिसके द्वारा, प्राणी तथा उसके भिन्न तत्वोंमें अभिरुचि उत्पन्न होती है। जिसके द्वारा स्वर्ग-मोक्षकी प्राप्ति होती है। इस रुचिके उत्पन्न होनेका प्रधान साधन है श्रद्धा-धर्ममें प्रेम करना, तीर्थ पर्य-टन, रथ-महोत्सव, पुराने मंदिरके उद्धारसे प्रतिष्ठाके द्वारा, मूर्ति-निर्माण तथा साधर्मियोंसे प्रेम करना। हे देवगणों! सम्यग्दर्शन द्वारा ही पापोंका नाश होता है और पुण्यका उदय। वह संसारमें अनुपमेय वस्तु है। अतः तुम भी इसे धारण कर, उपरोक्त सुखकी प्राप्ति करो। इन्द्रने उपरोक्त वर्णनमें निर्विचिकित्सा अंगके पालन करने वाले राजा उद्यायनकी बड़ी प्रशंसा की। देवराज इन्द्रके मुखसे मनुष्यकी प्रशंसा हो, ऐसी बात सुनकर वासव नामक देवने राजा की परीक्षा लेनी चाही। वह, उसी क्षण एक कोढ़ीका भेष धारण कर, दोपहरके समय राजा उद्यायनके राजभवनमें पहुंच गया। उसके अंग प्रत्यंगके गलनेसे दुर्गन्ध फैल रही थी। उसका समस्त शरीर क्षत-विक्षत हो रहा था। वेदनाके मारे उसके पैर इधर उधर लड़खड़ा रहे थे। उसको ऐसी बुरी दशा देखकर सब कोई उसके पाससे अलग हट जाते थे। जिस समय राजाकी दृष्टि उस बने हुये कोढ़ीपर पड़ी, वे सिंहासनसे उतर पड़े। राजाने श्रद्धा-भक्तिसे कपटी मुनिका आह्वान किया। उन्हें नवधा भक्तिसे युक्त, प्रासुक आहार कराया। किन्तु, थोड़ी देरके बाद उस कपटी मुनिने अपनी

मायाके योगसे, दुर्गन्ध बमन करना शुरू किया। जिससे वहांपर किसीका रहना असम्भव हो गया। किंतु धन्य हैं राजा और रानी, जिन्होंने उसकी वैयावृत्ति की। उसने रानीके ऊपर बमन कर दिया। तौ भी धर्मात्मा युगल जोड़ीने सेवा-धर्मसे मुंह नहीं मोड़ा। कपटी मुनिकी ऐसी बुरी हालत देखकर वे सोचने लगे कि हमने इन्हें प्रकृति विरुद्ध आहार देकर कष्ट पहुंचाया। हम लोग पापके भागी हुये हैं जो मुनिको निरन्तराय आहार नहीं दे सके। जिस प्रकार पापी, मनोभिलाषा पूर्ण करने वाले चिन्तामणि सदृश रत्न तथा कल्पवृक्ष नहीं पाते उसी तरह पापी, धर्मात्माओं द्वारा दिये गये सात्विक दानका भोग नहीं कर पाते। इसप्रकार, आत्म निंदाकर राजा-रानीने उस कपटी मुनिका मल युक्त शरीर, जलसे साफ किया। उसी समय छद्मवेषधारी देवने अपना असली रूप प्रकट कर सादर निवेदन किया, ' महाराजाधिराज, आपकी श्रद्धा तथा निर्वि-चिकित्साअंग पालन करनेकी जितनी भी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। आप दानियोंमें शिरोमणि हैं। देवेन्द्रने आपकी जैसी प्रशंसा की थी, वह सोलहों आने सिद्ध हुई। यदि सच पूछा जाय तो यही कहना पड़ेगा कि आपने पवित्र जैन-शासनका सच्चाईके साथ रह-स्योद्घाटन किया है। आप धन्य हैं, संसारमें माताका कौन लाल है जो कष्ट-पीड़ित मुनिकी सेवा करता। आप समान भूमण्डलमें कोई सम्यग्दृष्टि पुरुष नहीं है, आप सबके सरताज हैं।" इस प्रकार राजा उद्दायनकी प्रशंसा कर, वह देव स्वर्ग-लोक चला गया। राजा भी नियमानुसार दान, व्रत, पूजा तथा प्रजा-रंजनके कार्यमें तत्पर हो गये।

राजाने दीक्षा ली।

इस प्रकार वे बहुत दिनों तक राज्य करते रहे। एक दिन वे राजमहलके कोठेपर बैठकर आकाश मण्डलकी तरफ प्रकृतिकी लीला देख रहे थे। उसी समय उनकी दृष्टि बादलोंके समूहपर पड़ी वे क्या देखते हैं कि क्षण भरमें ही, हवाके प्रचण्ड झोंकेने उसे तितर बितर कर दिया। उसी समय राजा उद्दायनके हृदयमें संसारकी क्षण-भंगुरताका स्पष्ट चित्र नाचने लगा। उनके हृदयमें उसी समय वैराग्यका भाव उत्पन्न हो गया। उन्होंने अपने पुत्रको राजगद्दीपर बैठाकर भगवान् वर्द्धमानके समवसरणमें श्रद्धा-भक्तिसे नमस्कार कर पवित्र दीक्षा लेली। पाठक, वे इन्द्र, नरेन्द्र और धरणेन्द्र द्वारा पूज्य हुए। राजाने मुनि होकर कठिन तपस्या द्वारा संसारके सर्वोत्कृष्ट तीन रत्नकी प्राप्ति की। इसके बाद ध्यानके द्वारा अपने घातिया कर्मका नाश कर उन्होंने केवल ज्ञान प्राप्त किया। वे संसारी जीवोंकी भलाई करते हुए अन्तमें अघातिया कर्मका नाश कर अक्षय मोक्ष-धामके वासी हुए। रानी प्रभावतीने जिन दिक्षामें दिक्षित होकर समाधिमरण प्राप्तकर ब्रह्म स्वर्गमें देव हुई, जिन भगवान् ही संसारके श्रेष्ठ गुणोंके अनन्त भण्डार हैं, जो अपने केवल ज्ञान रूपी चन्द्र द्वारा संसारी जीवोंके अज्ञान अन्धकारका नाश कर इन्द्र, नरेन्द्र द्वारा पूजित होते हैं। ऐसे ज्ञानके अगाध सिन्धु, साधु-शिरोमणि भगवान मुझे (लेखक) मोक्षरूपी लक्ष्मीका वरदान दे यही विनम्र प्रार्थना है।

रेवती रानीकी कथा।

(६)

रेवति रानीने मिथ्याको छोड़ तपस्या की भारी।
अंग अमूढ़दृष्टि पालन हित उसने की थी तैयारी॥
जिन प्रभुके चरणोंमें मैं भो श्रद्धासे झुक जाता हूं।
उसकी परम पवित्र कहानी, पाठक, यहां सुनाता हूं॥

विजयार्द्ध पहाड़की दक्षिण चोटीमें, एक सुन्दर नगर है जिसे मेघ कूटके नामसे पुकारा जाता है। उस नगरमें राजा चन्द्रप्रभा राज्य करते थे। जब उन्हें राज्य करते हुए बहुत दिन हो गये तब उन्होंने तीर्थाटन करनेका विचार किया! इस प्रकार अपने मनमें निश्चय कर. अपने पुत्र चन्द्रशेखरके हाथमें राज्य-शासम सूत्र देकर वे तीर्थ-यात्रा करने निकल पड़े। जिस समय राजा, दक्षिण मथुरा पहुंचे,वहीं उन्होंने गुप्ताचार्यके दर्शन किये। राजा चन्द्रप्रभा आचार्य के मुंहसे धर्मोपदेश सुनकर बहुत प्रभावित हुए। श्रद्धेय आचार्यने अपने धार्मिक उपदेशमें कहा था, "पर उपकार जगतमें करना, महा पुण्यका कारण है।" आचार्यके मुंहसे इस प्रकारका उपदेश सुनकर राजा तीर्थ यात्रा करनेके लिये, अपने पास एक विद्या रखकर क्षुल्लक हो गये। एक दिनकी बात है कि उन्होंने उत्तर मथुराकी यात्रा करनेका विचार कर गुरुवरसे सानुरोध प्रार्थना की, "दया-सिन्धो! मैं उत्तर मथुराकी यात्रा करने जा रहा हूं, यदि आप वहाँ के किसी परिचित व्यक्तिको कुछ सन्देश देना चाहते हैं तो कहिये

आचार्यने कहा, "सूरत, मुनिराजको मेरा नमस्कार कह देना, साथ साथ ही धर्मशील रेवतीको मेरी तरफसे धर्मबृद्धिका सन्देशा दे देना।" आचार्यके इस प्रकार कहनेपर, क्षुल्लकने आश्चर्य प्रकट करनेवाले भावमें पुनः निवेदन किया, "क्या श्रद्धेय आचार्य किसी अन्य सज्जनको कुछ संदेश देना चाहते हैं ?" आचार्यने नहीं, कह कर अपनी असम्मति प्रकट की। उनके नहीं कहनेपर क्षुल्लकने अपने मनमें विचार किया, "आश्चर्य है कि आचार्यने एकादशांग के जानकार श्री भव्यसेनके समान मुनिराजकी विद्यमानतामें तथा अन्य श्रेष्ठ मुनियोंके रहते हुए सूरत मुनि और रेवती रानीके लिये ही नमस्कार तथा धर्म वृद्धिकी बात क्यों कही ? इससे ज्ञात होता है कि इसमें कुछ रहस्य है। जिसका पता वहां जानेसे अवश्य लग जायगा। इस प्रकार मनमें तर्क वितर्क करते हुए चन्द्रप्रभ क्षुल्लकने प्रस्थान कर दिया। वहां पहुंचकर उन्होंने सूरत मुनिसे आचार्यका नमस्कार कहा। मुनिराज बहुत प्रसन्न हुए, उन्होंने चन्द्रप्रभके साथ वात्सल्यका प्रेम प्रकट किया जिससे वे फूले नहीं समाये। किसीने कहा है:—

'नर-जन्म उसका हो सफल है इस अखिल संसारम।
पेश आते धार्मिकोंसे सरल शिशुके प्यार म॥

इसके बाद चन्द्रप्रभ क्षुल्लक भव्यसेन मुनिके पास गये, श्रद्धासे उन्हें नमस्कार किया। किन्तु उक्त अभिमानी मुनिने नमस्कारके प्रति धर्मबृद्धिकी बात तक नहीं कही। साधारण शिष्टाचारको भूल कर अभिमान दिखलानेसे धिक्कारका पात्र बनना पड़ता है। ऐसे लोग अविचारी होते हैं जो बचनमें भी अपने हृदयकी संकीर्णता

दिखलाते हैं। जो अभ्यागतका सत्कार प्रेमपूर्ण वचनोंसे नहीं कर पाते ऐसे अविचारीसे अन्य प्रकारके सत्कारकी आशा रखना बालूसे तेल निकालनेके समान है। जैन धर्मके शास्त्रोंमें ज्ञानकी महिमा का वर्णन समस्त दोषोंसे रहित किया गया है। उसे ही पाकर हृदय परम पवित्र बन जाता है। यह कितने दुःखकी बात है कि उसे प्राप्त कर यदि मिथ्या अभिमान रह ही गया। सच है इसमें पवित्र शास्त्रोंका क्या दोष है ?

जो लोग पाप कर्ममें गर्क रहते हैं उनके लिये सुधा गरल हो जाती है उसे ही 'अमृतमें विष' कहते हैं। इस प्रकार अपने मनमें विचार कर क्षुल्लकने निश्चय किया कि देखें, इनके नामके अनुसार इनमें तथ्य है या 'नाम बड़े दरशन थोड़े' की उक्ति चरितार्थ करने वाले हैं। उन्होंने उसी स्थानपर कमल फ़ूलोंसे युक्त कर दिया भव्यसेन महाराज उसे एकेन्द्री समझ तथा लघु पाप जान, रौंदते हुए शौच करने मैदानमें चले गये। शौच कर लेनेके बाद भव्यसेनने ज्योंही कमण्डल उठाया, उसमें जलका एक बूंद नहीं पाया। भव्यसेन घबड़ाये—इतनेमें क्षुल्लक महोदय वहां पहुंच गये। भव्यसेनको जलके लिए चिन्तित देख उन्होंने कहा, "मुनिराज ! आप चिन्तित क्यों हैं ? पासमें एक सरोवर है उसके जलसे शुद्धि कर लीजिये। भव्यसेनने कर्त्तव्यको भुलाकर तालावके जलसे शरीरकी शुद्धि कर ली। किसीने ठीक ही कहा है:—

मिथ्या-दृष्टि फेरमें पड़कर, क्या कुकर्म नहिं करते हैं—
मूरख जनके शास्त्र ज्ञान तो कुपथ प्रदर्शक होते हैं॥
उनके ज्ञान-चरित्र कभी भी नहीं मोक्ष साधन होते।

जैसे सूर्योदय उल्लू लख दिनमें प्रायः हैं रोते॥
मधुर दूध तूंबीमें पड़कर, कड़ुवा ही वन जाता है।
ऐसे ही, इनमें न भव्य जिन धर्म-भाव दिखलाता है॥

रानी रेवतीकी परीक्षा।

भव्यसेनकी परीक्षा करनेके वाद, क्षुल्लकने रानी रेवतीकी परीक्षा लेनी चाही। वस, उसने कमलका आसन ग्रहण कर हाथोंमें वेद ले चतुर्मुख वाले ब्रह्माका वेप वनाकर नगरसे वाहर पूरव दिशाके जंगलमें अपना आसन जमाया। राजा भव्यसेन ब्रह्माके आगमनका सुसंवाद ज्ञातकर, अन्य नगर निवासियोंके साथ वहां गया, उसने वने हुए ब्रह्माके चरणोंमें भक्ति-भावसे नमस्कार कर प्रसन्नता प्राप्त की। उसने अपनी रानी रेवतीसे ब्रह्माके पास दर्शनार्थ चलनेकी बात कही किन्तु, वह क्यों जाती? वह सम्यकत्वसे विभूपित थी, जिनेन्द्र महाप्रभुकी अनन्य सेवक थी, उसने वहाँ जाने से साफ इनकार कर दिया। राजाके बहुत अनुरोध करनेपर, उसने कहा, "नाथ! पवित्र जैन धर्म-शास्त्रमें, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक्चरित्र तथा मोक्षको देने वाला सच्चा ब्रह्मा श्री आदि जिनेन्द्र को ही कहा है, तब संसारमें दूसरा ब्रह्मा हो नहीं सकता। इसलिए मेरा यही कहना है कि किसी धूर्तराजने झूठे ब्रह्माका वेष वनाकर कपट-जाल विछाया है। महाराज, ऐसे कपटी ब्रह्माके दर्शन करनेके लिये मैं नहीं जाती। दूसरे दिन क्षुल्लकने गरुड़का वाहन, चतुर्भुज धारी, शंख, चक्र, गदा, पद्म हाथमें लेकर दैत्यारि विष्णुका वेष धर नगरसे दक्षिणमें जाकर आसन जमाया। तीसरे दिन उसने

बैलपर चढ़, शिरपर जटा जूट बाँध, अँगमें राख लपेट विकराल शिवकी मूर्त्ति बना नगरसे पश्चिम दिशामें जाकर अपना आसन ग्रहण किया। चौथे दिन उसने अपनी योग-मायाके प्रभावसे मिथ्या दृष्टियोंके मान मर्दन करने वाले, आठ प्रांतिहार्योंसे युक्त, निग्रन्थ मान स्तंभादिसे युक्त, जगतमें श्रेष्ट भगवान तीर्थंकरका वेप बनाकर, पूर्व दिशामें अपना अड्डा जमाया। वहां अनेकों देव, विद्याधर, चक्रवर्त्ती नमस्कार कर रहे हैं ऐसा प्रदर्शन किया। समस्त नगरमें भगवान तीर्थंकरके आगमनका समाचार बिजलीकी तरह शीघ्र ही फैल गया। सब लोग, जो जहां थे दर्शन करनेके लिये दौड़ पड़े। भव्यसेन भी उनमें सम्मिलित थे। किन्तु भगवान तीर्थंकरके आगमनपर भी जब रानी रेवती वहां दर्शनार्थ नहीं गई तब सब लोग आश्चर्य प्रकट करने लगे। राजा तथा अन्य कई लोगोंने उससे चलनेके लिये आग्रह किया किन्तु वह क्यों जाने लगी? उसने अपने मनमें विचार किया,—"तिर्थंकर देव चौबीस हैं, वासुदेव नव हैं और रुद्र ग्यारह होते हैं तब इस स्थानपर पचीसवें तीर्थंकर दसवें वासुदेव और बारहवें रुद्र कहांसे आ टपके? उपरोक्त देव अपने कर्मके अनुसार जहां जाना था वहां चले गये, अब यहां नई रचना कैसी, इसमें कोई चाल है। सच है! किसी मयावीने इन्द्र जालकर भोले-भाले लोगोंको भुलावामें डाल रखा है। अतः वहां जाना निरर्थक है। इसमें कितनी सचाई भरी हुई है कि वायुसे कहीं सुमेरु पर्वत डिग सकता है! इसके अनन्तर क्षुल्लकने रानी रेवतीकी परीक्षा लेनी चाही। उसने अपने उसी वेषमें अनेक रोगों से अक्रान्त होकर मैला कपड़ा पहन उसके राज-भवनमें प्रवेश किया

वह राजभवनमें पहुंचते ही कटे पेड़की तरह जमीनपर गिर पड़ा। रेवती दौड़ पड़ी, वह उन्हें उठा कर होशमें लाई। इसके बाद श्रद्धा भक्तिसे उन्हें प्रासुक आहार कराया। जो लोग धर्ममें दृढ़ भाव रखते हैं वे सदा दान देनेमें तत्पर रहते हैं। क्षुल्लक अभी उसकी परीक्षा लेना चाहते थे। अतः आहारके बाद ही उन्होंने वमन कर दिया जिसकी दुर्गन्धिसे वहां रहना मुश्किल हो गया। रानी उसकी ऐसी हालत देखकर अत्यन्त दुःखी हुई, उसने अपने मनमें विचार किया, "हाय मेरे आहार देनेके कारण इन्हें कितना कष्ट हुआ, अतः मुझे धिक्कार है, अपने मनमें इस प्रकार दुःखी हो उसने गरम जलसे उनका शरीर साफ कर अपने मनमें घोर पश्चाताप किया। रेवतीकी ऐसी श्रद्धा भक्ति देखकर क्षुल्लकने अपना असली रूप प्रकट कर इस प्रकार कहा, "आदरणीय गुरु महाराज गुप्ताचार्यको धर्मवृद्धि। तुम्हारा कल्याण साधन करे और मैंने अपनी यात्रामें तुम्हारे नामसे जहाँ २ श्री जिनेश्वरको पूजा की है वह भी तुम्हें शुभ प्रदान करे। श्रेष्ठ देवी ! आज मैंने परीक्षा द्वारा तुम्हें अमूढ़-दृष्टिमें दृढ़ पाया जिसके द्वारा मनुष्य भवसागरको सहज हीमें पार कर जाता है। देवी, तुम्हारा सम्यकत्व त्रिभुवन भरमें अनुपमेय है, ऐसा कौन है जो उसका वर्णन कर सकता है ? इस प्रकार रानी रेवतीकी प्रशंसा कर वे वहांसे चल पड़े। इसके अनन्तर, राजा वरुणने अपने पुत्र शिवकीर्तिको राज्य भार सौंप, संसारी मोह-ममता छोड़ साधुका वेष धर लिया। वे कठिन तपस्याकर समाधि-मरण द्वारा माहेन्द्र स्वर्गमें महर्द्धिक देव हुए। महारानी ...का रोम २ जैन धर्मके पवित्र रंगमें रंग चुका था, उनने कठिन

तपकर ब्रह्मस्वर्गमें महर्द्धिक पद-ग्रहण किया। अतः पाठको ! यदि आप भी स्वर्ग-मोक्षका सुख प्राप्त करना चाहते हैं तो रानी रेवतीके समान मिथ्यात्व छोड़कर परम पवित्र जैन-धर्मकी शरणमें आइये जिसे अनेकों देव, विद्याधर तथा राजे महाराजे ग्रहण कर मोक्षाधिकारी होते हैं।

भक्त जिनेन्द्रकी कथा।

---

(१०)

जैन धर्म निर्दोष सदा है कौन सदोष बनायेगा ?
मूरख पागल मीन-मेखकर अपना धर्म गंवायेगा ॥
पित्त-कोप वाले ज्वर रोगी पयको कडुवी कहते हैं।
अतः जिनेन्द्र भक्तकी गाथा,का शुभ वर्णन करते हैं॥

सौराष्ट्र देशके, पाटलीपुत्रमें आजकल जिसे पटना कहते हैं, जहां की पवित्र भूमि भगवान नेमिनाथके जन्मसे आज भी प्रख्यात है, उसी नगरमें, राजा यशोध्वज राज करते थे। उनकी सुशीमा नामक बड़ी सुन्दर रानी थी, उसके सुवीर नामका एक पुत्र था। सुवीर अपनी माताके पापोदयके कारण दुर्व्यसनी तथा चोर हुआ। जिन्हें खराब योनिके दुःख भोगने पड़ते हैं, उनका जन्म यदि अच्छे कुलमें भी हो तो वे अपने माता-पिताको सुख देनेके स्थानपर घोर कष्ट पहुंचाते हैं।

भक्तकी उदारता ।

उन दिनों, गौड़ देशके अन्दर, तामलिप्ता नामक पुरीमें सेठ जिनेद्र भक्त रहते थे। वे अपने नामके समान भगवान जिनेन्द्रके भक्त थे। उनका सच्ची सम्यग्दृष्टि, तथा श्रावक धर्मका सतत पालन अनुकरणीय रहा। सेठने अनेकों विशाल जैन मंदिर बनवाये, पुराने जिनालयोंका उद्धार करा कर, चारों संघोंको प्रचुर दान देकर अपनी महान् धर्म भक्तिका परिचय दिया। सम्यग्दृष्टियोंमें सर्व श्रेष्ठ जिनेन्द्र भक्तका भवन सात मंजिला था। सेठने भवनकी अंतिम मंजिलपर जैनमन्दिरका निर्माण कराया था, उसमें भगवान् पार्श्वनाथ की दिव्य मूर्त्ति थी। मूर्तिके ऊपर तीन रत्नजड़ित छत्र शोभित थे। उसके ऊपर एक बहुमूल्य रत्न जड़ा हुआ था जिसका नाम वैडूर्य मणि था। सुवीरने उक्त बहुमूल्य मणिका चर्चा सुनी। एक दिन उसने अपने चोर साथियोंको बुलाकर कहा,—"मित्रो! क्या तुम लोग नहीं जानते कि सेठ जिनेन्द्र भक्तके मन्दिरमें एक बेश कीमती मणि लगा हुआ है? तो क्या कोई उसको चोरी कर सकता है?" सूर्यक नामक चोरसे बैठा रहा नहीं गया, उसने सबसे प्रथम जवाब दिया,—"अरे, चैत्यालयसे मणि चुराना कौनसी बहादुरी है, यदि देवेन्द्रके सिरपर वह मणि रहे तो मैं ला सकता हूं। जो जितना ही अधिक पापी होता है उसके पापकी मात्रा उतनी ही बढ़ी चढ़ी रहती है। सूर्यक चोर सेठके मन्दिरसे, मणि चुरानेके लिये चल पड़ा। उसने नकली ब्रह्मचारी का वेष बनाया। वह व्रत, उपवासादि करनेसे दुर्बल हो रहा था। अनेक देशमें भ्रमण करता हुआ, तामलिप्सा नगरीमें जा पहुंचा। जिस समय सेठ जिनेन्द्र

भक्तने ब्रह्मचारी (नकली) के आगमन की बात सुनी, वे सच्चे धर्मात्मा थे—उस धूर्त ब्रह्मचारीके पास जा उसे प्रणाम किया। वह, उपवास रहनेके कारण दुर्बल हो रहा था जिससे उसपर सेठजी की अत्यधिक श्रद्धा हो गयी। सेठ, आदरसे उसे अपने महलमें ले आये। किसीने ठीक ही कहा है,—

"बड़े २ विद्वानों तक जिसको चालोंमें फँस जाते।
साधारण जन धूर्तराजसे, कैसे पिंड छुड़ा पाते॥"

धूर्तराज ब्रह्मचारी चैत्यालयमें जाकर उक्त बहुमूल्य मणि देख फूला नहीं समाया। जिस प्रकार सोना चुराने वाला सुनार अपने सामने किसीको सोना ले आता हुआ देखे उसी प्रकार उक्त मणिके देखनेसे सूर्यक चोरकी दशा हुई। भक्तराजने ब्रह्मचारीके ऊपर पूर्ण विश्वास कर उसके ऊपर अपने विशाल चैत्यालयकी रक्षाका भार सौंप समुद्र यात्राके लिये प्रस्थान कर दिया। उक्त चोरकी पांचों अंगुलियां घीमें पड़ गयीं। उसने आधी रात्रिके समयमें धीरेसे मूर्ति के ऊपरसे मणि चुराकर प्रस्थान किया। यद्यपि, वह कपड़ेमें मणि छिपाकर तेज़ीसे जा रहा था, किन्तु उसकी दिव्य ज्योति कपड़ा छेद कर बाहर दिखलायी देने लगी। पहरेदार ब्रह्मचारीके कपड़ेके भीतर मणि देख उसे पकड़नेके लिये दौड़ पड़े। ब्रह्मचारी बड़ी तेजीसे भागा पीछेसे पहरेदार, पकड़ो २ चोर मणि लेकर भागा जाता है" कहते हुये उसका पीछा करने लगे। वह शरीरकी कमजोरीके कारण भागनेमें असमर्थ रहा; उसे सिपाही पकड़ना ही चाहते थे, तब तक वह 'जिनेन्द्र भक्तके पास जा रक्षा कीजिये, बचाइये' कहकर उनके पैरों पर गिर पड़ा भक्तराज, हाल सुनकर तथा उसके हाथमें मणि देख

समझ गये कि यह ब्रह्मचारीके पवित्र वेषमें चोरी करता फिरता है, किन्तु उसे शरणमें आया देख उन्होंने सिपाहियोंसे कहा, "तुम लोगोंने क्या किया ? जो एक सच्चे तपस्वीको चोर बनाया। मैंने इनसे मणि ले आनेको कहा था, कम अक्ल वालो, तुमने बड़ा अनर्थ किया। सेठकी झिड़की सुनकर सिपाही नतमस्तक हो चले गये। इसके बाद भक्तराजने उसके हाथसे मणि लेकर विनम्र शब्दोंमें कहा,—"आश्चर्य है कि तुम पवित्र वेष धारण कर उसे कलंकित कर रहे हो। दुःख है तुम्हारे पाप कर्म पर, तुम्हारा ऐसा दुष्कर्म करना कितना निंदनीय तथा घृणास्पद है। तुमने दुर्लभ शरीर पाकर उस पर कलंक लगाया है। याद रक्खो, तुम अपने दुष्कर्मके कारण, घोर नर्कका दुःख भोगोगे। पापियोंके लिये यह उक्ति ठीक है:—

न्याय मार्गको तजकर पापी, बुरे कर्म अपनाते हैं।
भवसागरमें पड़कर वे ही, बहुत काल दुख पाते हैं॥
पाप-पंथपर चलकर पापी, घोर यातना सहते हैं।
'बुरा कर्म तज, सत्य मार्ग गह, यही शास्त्र, ऋषि कहतेहैं॥

देखो तुम्हारे समान बुरा कर्म करने वाले अनन्त कष्ट भोगते हैं। भला, सोचोतो सही, अपने दुर्लभ मानव तनको ऐसे दुष्कर्म द्वारा क्यों नाशकी खाईमें झोंकते हो ? अभीसे चेत जाओ, आत्म-कल्याणकर अपना उद्धार करो, नहीं तो नरकमें जाकर तुम्हारी बड़ी बुरी दशा होगी। इस प्रकार उक्त चोरको आत्म कल्याणका पवित्र उपदेश देकर जिनेन्द्र भक्तने उसे भेज दिया।" भव्य पुरुष इसी प्रकार पापियोंको पवित्र उपदेश देकर कल्याण करते हैं। सच है, पवित्र जैन-धर्मकी निर्दोशिताके ऊपर जो लोग दोष लगाते हैं वे

पित्तसे कुपित ज्वराक्रांत रोगोके समान, मीठे दूधको भी कडुआ कह दूर फेंक देते हैं।

वारिषेण मुनिकी कथा।

(११)

वारिषेण मुनि तप कर कैसे महात्मा पद पाते हैं।
वे भगवन के भक्ति-भावमें, ओत प्रोत हो जाते हैं॥
जो सम्यग्दर्शनके स्थिति करण अंगको पूर्ण किया।
कठिन तपस्या करके अपने कर्म रोगको चूर्ण किया॥

कृपालु पाठक! मैं (लेखक) जिन दिनों की कथा लिख रहा हूं—उन दिनों समग्र भारतमें मगध-साम्राज्य, उसके सम्राट् महाराजाधिराज श्रेणिकका प्रबल-पराक्रम दिग्दिगान्तर तक फैल गया था। राजगृह उसी विशाल-सम्राज्य की राजधानी थी। उसके शासक थे सम्राट् श्रेणिक। वे राजनीति शास्त्रके धुरन्धर आचार्य थे। उनकी उदारता प्रसिद्ध थी, वे सम्यग्दृष्टि थे। इस प्रकार उनकी रानी चेलनी सती-शिरोमणि-स्त्री-रत्न थी। वह भी सम्यक्त्व धारण किये हुए थी। उसी विदुषी रानीके वारिषेण नामक पुत्र हैं जो हमारी कहानीके नायक हैं।

प्राण दण्डसे रक्षा।

धर्मवीर वारिषेणके गुणोंकी क्या प्रशंसा की जाय। वे श्रावक थे तथा गुणोंके भण्डार। एक दिन की बात है कि मगधसुन्दरी

वेश्या, राजगृहके उद्यानमें सैर सपाटा करने आयी थी। उद्यानमें ही उसकी नजर, सेठ श्रीकीर्तिके गलेके हार पर पड़ी। वह (वेश्या) हार देख कर मोहित हो गयी। उसने मनमें हार लेनेका प्रण कर लिया अपने प्रेमी (चोर) को आया देख वेश्या अपना चेहरा उदास कर एक ओर बैठ रही। उक्त चोरने अपनी प्रेमिकाको इस प्रकार उदास देख कर चौंक कर कहा,—"प्रिये आज मैं तुझे उदास देख रहा हूं, इसका क्या कारण है? तुम्हे उदास देखकर मेरा मन घबड़ा रहा है, प्यारी! जल्दी अपनी चिन्ता प्रकट करो।" मगधसुन्दरीने उसकी तरफ अपनी तिरछी नज़र कर भर्रायी हुई आवाजमें कहा,—"मैं जानती हूं कि तुम मुझे सच्चे रूपमें प्यार नहीं करते, तुम्हारा प्यार बनावटी है। प्यारे! यदि, तुम मुझे प्यार करते हो तो मेरा एक कहना करो। आज मैंने बगीचेमेंसे श्रीकीर्ति के गलेमें एक बहु मूल्य सुन्दर हार देखा है, मैं उसे (हार) चाहती हूं। जब वह हार लाकर मुझे दोगे तो मैं तुम्हें अपना सच्चा प्रेमी समझूंगी अन्यथा यही जानूंगी कि तुम्हारा प्रेम बनावटी है।" वेश्याकी कठिन प्रतिज्ञा की बात सुनकर विद्युत चोरका माथा ठनका। परन्तु, वह था वेश्यागामी यदि, उसकी बात पूरी नहीं हुई तो, उसके प्रेमसे वंचित हो जाना पड़ेगा। उसने वेश्याको धीरज देकर हार चुरानेके लिपे प्रस्थान किया। विद्युत चोर चालाकीसे सेठके गलेसे हार चुरा कर तेजीसे चला। किन्तु, वह हारकी चमकती ज्योति कहां छिपाता। पहरेदारोंने उसके हाथमें ज्योति देख, उसे चोर समझ पकड़नेके लिये पीछा किया। अपने पीछे सिपाहियोंको दौड़ता देख विद्युतचोर तेजीसे भाग कर श्मशानमें चला

गया। वह वारिषेणको देख कर वहीं हार फेंक एक ओर छिप रहा थोड़ी देरके बाद, सिपाही दौड़ते २ आये। वारिषेणके पास हार देख सिपाहियोंने कहा,—"महाशय, चोरी छिपानेकी कैसी तरकीव निकाली, आप चाहे कोई हों हम मालिकके खैर ख्वाह सच्चे नौकर हैं हमारे हाथसे आपका छुटकारा नहीं हो सकता। इस प्रकार कह वे वारिषेणको बांधकर महाराज श्रेणिकके पास ले गये। महाराज, अपने पुत्रको चोरीमें पकड़ा हुआ देख, क्रोधसे दांत चबाने लगे। उनके नेत्र क्रोधसे रक्त वर्ण हो गये। महाराज श्रेणिकने तीखे स्वरमें गर्ज कर कहा,—"नालायक, धोखे बाज कहीं का। चोरी करते शर्म नहीं आई। एक तरफ श्मशानमें जाकर तपस्या करता है, मगर लोगोंके घरमें चोरी करता है। कुलमें दाग लगानेवाला पापी! आज तेरे धर्मकी कलई खुल गई। पापी, पाप करनेमें क्या २ ढोंग रचा करते हैं? ओ बदकिस्मत पुत्र! मैं तुझे ही अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था। मुझे क्या खबर थी कि तू ऐसा नीच निकलेगा। मेरे लिये, इससे बढ़ कर और कौन सी दुखदायी बात होगी! अतः नालायक! पापी! चोर पुत्रका जीवित रहना खतरेको अपनाना है। पापी, अपने दुष्कर्मका फल अभी, अपनी मृत्युसे चख। तेरा जीना हमारे लिये तथा प्रजाकी भलाईके लिये हानि-प्रद है। सिपाहियो! इसे जल्लादके हाथों सौंप कर तलवार की घाट उतरने दो। महाराजकी ऐसी कठोर आज्ञा सुनकर सभी थर्रा गये। अपने प्रिय पुत्रको प्राणदण्ड, आश्चर्य है! इसप्रकार कह कर लोग तरस खाने लगे। मगर, सबके सब मजबूर थे। किसीने एक शब्द भी अपने मुंहसे नहीं कहा। वारिषेण, कत्ल करनेके लिये श्मशानमें ले जाये गये।

तलवारका वार विफल।

जल्लादने उनकी गर्दन पर कसकर अपनी तलवार चलायी। मगर आश्चर्य कि उसका वार विफल हुआ। जल्लादकी तलवार वारिषेणकी गर्दनपर फूलके समान मालुम हुई। उधर जल्लाद महान आश्चर्यमें हो गये। उनके आश्चर्यका ठिकाना नहीं था। वे सोचने लगे, यह क्या हो गया ? तलवारका वार खाली जाय, महान आश्चर्य है। किन्तु वारिषेणके पुण्य-प्रतापने उनकी रक्षा कर ली है किसीने ठीक ही कहा है:—

पुण्यकी महिमा अगम है, पुण्य सुखका सार है।
अग्नि जल, होता उदधि थल, शत्रु मित्राचार है॥
विपत्ति संपति, गरल अमृत, वन रहे पलमें जहां।
कष्टके उद्धार में इक पुण्य रक्षक है महा॥
दान, व्रत, जिन-भक्ति पूजा सद्विचार पवित्र हैं।
आचार शुभ करना सतत पुण्यात्माका मित्र है॥
झूठ हिंसा हो जगतमें पापका आचार है।
सत्य का पूजन करो, बेड़ा तुम्हारा पार है॥

पश्चात्ताप।

इस प्रकारकी अलौकिक घटना देखकर सबके मुंहसे एक ही बार 'धन्य धन्य' का शब्द निकल पड़ा। देवताओंने स्वर्गसे आकर वारिषेणके ऊपर सुगन्धित फूलोंकी वर्षा की, उस समय, उनके जयजयकारसे आकाश गूंज उठा। राजगृहवासी, ऐसी आश्चर्य जनक बात सुनकर, धर्मात्मा वारिषेणके शुभ दर्शन करनेके लिये

जो जहाँ थे काम छोड़ दौड़ पड़े। नगर निवासियोंने विनम्र शब्दों में कहा, "वारिषेण, तुम्हारा पवित्र जीवन धन्य है। यदि संसारमें कोई साधु, तपस्वी या महात्मा हैं तो तुम ही हो। वारिषेण, तुम ही भगवानके सच्चे भक्त हो, पवित्र आत्मा तुमने ही जैन धर्मके पवित्र सिद्धान्तोंका सचाईसे पालन किया है। हे पुण्य देव ! हम किन शब्दोंमें तुम्हारा गुणानुवाद गावें। तुम धन्य हो, तुम्हारी जय हो, पुण्य कार्य द्वारा सब कुछ सम्भव है। उधर महाराज श्रेणिक अपने पुत्र वारिषेणके सम्बन्धमें आश्चर्य जनक घटना सुनकर-पश्चातकी ज्वलित ज्वालामें जलने लगे। उनके मुंहसे एकाएक यह उक्ति निकल गयी:—

जो मूरख आवेश-भावमें, विना विचारे कर जाते।
हैं पछताते, दुःख उठाते जगमें हँसी सहज पाते॥

इस प्रकार अपने मनमें दुःखी होकर श्मशान भूमिमें आये जहां उनका प्रिय पुत्र, पुण्यात्माकी शाक्षात मूर्ति बनकर अपनी अलौकिक प्रतिभा दिखा रहा था। अपने प्रिय पुत्र वारिषेणको श्मशानमें देखकर पिताका हृदय वात्सल्य प्रेमसे गद्गद् हो गया। आंसुओंने आंखोंकी राह बहना शुरू किया। महाराजने वारिषेणको छातीसे लगाकर रोते हुए कहा,—"पुत्र ! मुझे क्षमा प्रदान करो। मैं उस समय क्रोधमें पागल बन गया था, जिससे न्याय-अन्यायकी विवेचना नहीं कर सका। हाय, मैंने तुम्हारे साथ बड़ाभारी अन्याय किया है, उसी पापसे मेरा हृदय धू-धूकर जल रहा है। पुत्र, अपने क्षमादान रूपी जलसे मेरा जलता हृदय शान्त करो। देखो, मैं शोक-समुद्रमें डूब रहा हूं, मुझे डूबनेसे बचाओ। पुत्र, मेरा हाथ

पकड़ मेरी रक्षा करो।" अपने माननीय पिताजीको शोक-संतप्त वाणी सुनकर, वारिषेणने हाथ जोड़कर विनीत शब्दोंमें कहा:— पिताजी, आप यह क्या कह रहे हैं? इसमें शोक करनेका क्या कारण है? आपको प्रसन्न होना चाहिये कि आपने मुझे दण्ड देकर अपने कर्त्तव्य धर्मका पालन किया है। पिताजी संसारमें कर्त्तव्य पालनसे बढ़कर कोई धर्म नहीं। आपने उसे पूर्णकर अपने पदकी मर्यादाकी रक्षा कर ली है। पिताजी, यदि आप मुझे प्रिय पुत्र होनेके कारण, निर्दोष होनेपर भी दण्ड देनेसे बाज आते, उस समय आप अपनी प्यारी प्रजाकी नजरोंसे गिर जाते। प्रजा क्या सोचती? वह यही समझती कि राजाने अपने पुत्रको दण्ड न देकर न्यायका गला घोंटा है। आपके व्यक्तित्व, फल तथा न्यायके ऊपर घोर कलङ्कका टीका लगता। मैं यद्यपि निर्दोष था, किन्तु प्रजासे क्या सम्बन्ध? वह तो न्याय अन्यायकी बात सुनती नहीं पिताजी आप यदि ऐसे महत्वपूर्ण समयमें कर्तव्यके कठोर पथसे विचलित हो जाते तो हमारे पवित्र कुलमें सदाके लिए कलङ्कका टीका लग जाता। आज मैं आपके कर्त्तव्य पालन, आपकी न्याय निष्ठा तथा सत्य भावनापर फूला नहीं समाता। पिताजी, अपने हृदयसे शोक सन्ताप दूरकर शान्त हो जाइये। आप जान लें कि मेरे पापके उदयसे ही, निरपराध होते हुए भी मुझे कष्टके फन्देमें फंसना पड़ा है। मेरे हृदयमें इसके लिये तनिक भी चिन्ता नहीं है, क्योंकि एक कविने कहा है:—

कर्म करनेका अशुभ शुभ, फल सदा मिलता यहाँ।
कर्म जो करता यहां पर फल वही चखता यहां॥

सच है ऐसे उदार हृदय वाले, अपनी सहृदयता, नम्रता, वचन प्रियता और हृदय महानताके कारण धन्यवादके पात्र समझे जाते हैं। अपने प्रिय पुत्रके उदार प्रिय बचन सुनकर महाराज अत्यन्त प्रसन्न हुए। उनके हृदयसे शोकका संताप शांत हो गया उन्होंने सत्पुरुषोंके वचन कहे:—

चन्दनको तुम जितना रगड़ो प्रिय सुगन्ध फैलाता है।
अगरु अग्नि कुन्डमें जलकर अपना गन्ध लुटाता है॥
सत्पुरुषोंको दुर्जन जितना कष्ट-यातना देते हैं।
शान्त हृदय सज्जन उपकारोंसे निज बदला लेते हैं॥

चोरने क्षमा मांगी

उधर विद्युत चोर उसी स्थानमें छिपकर वारिषेणका अलौकिक चमत्कार देखता था। अन्तमें उसने डरकर अपने मनमें विचार किया कि इस समय उसके प्राणोंकी रक्षा हो सकती है। नहीं तो पीछे महाराज कठोर दण्ड देंगे इसलिये, उनसे सच्ची बात कहकर प्राण-दान मागना लाभप्रद समझा। इस प्रकार अपने मनमें दृढ़ निश्चय कर उसने निर्भय होकर महाराजके सामने जाकर समस्त घटना कह सुसाई। जो यों है:—महाराज! वह पापी मैं हूं जिसने वेश्याके जालमें फंस सेठके घरसे हारको चोरी की थी। महाराज मैंने वारिषेणके आगे हार फेंककर अपनी रक्षा की है। अतः हे महाराज, मैं दोषी हूं, किन्तु, मैं पश्चाताप करता हूं. मुझे क्षमा-दान मिले, मैं भविष्यमें पुनः पाप-कर्म नहीं करूंगा। विद्युतचोरकी स्पष्ट वात सुनकर महाराजने उसे क्षमा-दान देकर अपनी विशाल सहृदयताका

परिचय दिया। इसके बाद उन्होंने वारिषेणसे कहा, "पुत्र. अब घर चलो, नहीं तो तुम्हारे वियोगमें तुम्हारी माता रोती होगी।" अपने पिताकी बात सुनकर वारिषेणने आदरके साथ निवेदन किया, 'पूज्य पिताजी! इसके लिये मुझे क्षमा करें, मैं अब घर जाकर संसारके बन्धनमें जकड़ना नहीं चाहता। मैं संसारकी लीला देख चुका हूं। अब मैं जंगलमें जाकर मुनि होकर जैनधर्मकी सेवामें रहकर आत्म कल्याण करूंगा। जमीनपर सोऊंगा, हाथपर खाऊंगा। पिताजी, मैं संसारके मोहमें फंसना नहीं चाहता, सांसारिक लीलायें देखकर मेरी निर्दोष पवित्र आत्मा कांप उठती है। मैं उसके कष्टोंको देख कर घबड़ा गया हूं अतः आप मुझे घर चलनेको न कहें, मैं तो तपस्वी वन कल्याणके मार्गमें चलना पसन्द करता हूं। किसीने सच कहा है:—

करमें दीपक लेकर कोई, कूंएमें गिर जायेगा।
कहदो? उस दीपकसे वह जन, कैसे लाभ उठायेगा॥
जगकी लीला देख अगर मैं, हो अजान फँस जाता हूं।
दो अक्षरका ज्ञानी होकर, मूरख पदवी पाता हूं॥
'क्षमा करें लाचार हुआ मैं, अब न फंसूगा कहता हूं।
दया करो हे पूज्य पिताजी, वचन उलंघन करता हूं॥

इस प्रकार कहकर वारिषेण वहांसे चल दिये। उन्होंने श्रीसूरदेव मुनिसे दीक्षा ले ली। अब उनके जीवनमें नया अध्याय शुरू हो गया। वे कठिन तपस्या द्वारा, अपने निर्मल चरित्रका दृढ़तासे ..न करने लगे। एक दिन वे देशके समस्त भागोंमें, धर्मोपदेश .. हुये पलाशकूट नामक नगरमें जा पहुंचे। उस नगरमें, महा-

राज श्रेणिकका मंत्री रहता था, उसके पुत्रका नाम पुष्पडाल था। वह दया, दान, एवं सद्धर्ममें लगा रहता था। जिस समय उसने वारिषेण मुनिको देखा, उसने श्रद्धाके साथ नवधा भक्तिसे उन्हें प्रासुक आहार दिया। आहारके बाद, मुनि चलने लगे तब मंत्री-पुत्र शिष्टाचारके नाते उनके साथ होलिया। कुछ दूर जानेपर, उसने अपने मनमें विचार किया कि मुनिराज मुझे लौट जानेके लिए अवश्य कहेंगे। किन्तु, जब मुनिराजने उससे कुछ भी नहीं कहा। तब, वह जल्दी घर लौट जानेका उपाय करने लगा। इस विचारसे उसने मुनिसे कहा, "देखिये, यह वही तालाब है जिसके आम्र वृक्षके नीचे हम लोग बाल क्रीड़ा किया करते थे। मुनिराज, देखिये हम लोग उस बड़े मैदानमें पहुंच गए जहांपर हमने अपने बाल्य-कालके कितने वर्ष खेलमें बिताए थे। वह इन बातोंसे मुनिका ध्यान इस विषयकी ओर आकर्षित करना चाहता था कि वह घरसे बहुत दूर चला आया है उसे लौट जानेकी आवश्यकता है। किन्तु, मुनिराज उससे घर लौट जानेके लिए क्यों कहने लगे? वे रास्तेमें वैराग्यकी चर्चा करते रहे जिसके प्रभावसे प्रमुदित होकर पुष्पडालने मुनिवेष धारण कर संयम पूर्वक रह शास्त्रोंका अध्ययन करना प्रारम्भ कर दिया। किन्तु, उसके अन्तस्तलसे भोग विलासकी कामना तृप्ति नहीं हुई थी, वह रह २ कर अपनी स्त्रीकी याद किया करता। आचार्योंने कहाहै :—

धिक्कार है उस कामको उस भोगको धिक्कार है।
मोहमें फंस सुजन चलते कुपथमें धिक्कार है॥
लोभकी दरयामें डुबकी जो लगाते हैं यहाँ।
नाशकी खाईमें गिरते, आत्म-हित करते कहां॥

इस प्रकारकी जहालतकी दशामें पड़े हुए उसे बारह वर्ष हो गये। इसके बाद गुरुने उसकी तप साधना सफल होनेके विचार से, उसे तीर्थ भ्रमण करनेका उपदेश दिया। उसके साथ गुरु महाराज भी चले। वे यात्रा करते हुए एक दिन भगवान वर्धमानके समवशरणमें गये। वहांपर गन्धर्वगण भगवान्‌की वन्दना कर रहे थे, अतः हम लोगोंने उन्हें नमस्कार किया। उसी समय भगवान्‌ने कामके विरुद्ध यह पद्य कहाः—

मइल कुचेली दुम्मणी णाहे पत्रसियएण।
कह जीवे सइ धणियधर उब्भते विरहेण॥

अर्थातः—

स्त्री चाहे मैली हो या वह हो अरे कुचेली।
चाहे आप उसे कह दें यह है निजमनकी मैली॥
पति-वियोगमें, वह क्या जीती, दर-दर मारी फिरती।
वनमें पर्वतकी खोहोंमें काम विवश! हो मरती॥

उपरोक्त पद्य सुनते ही पुष्पडाल मुनिके कामुक हृदयमें भोग-विलासकी तीव्र वासना प्रज्वलित हो गयी। वे उसी समय अपने नगरकी तरफ चल पड़े, वारिषेण मुनि उसके मनकी बात ज्ञात कर पीछे २ चले। जिस समय गुरु शिष्य अपने नगरमें पहुंचे, रानी चेलनाने अपने मनमें विचार किया कि मेरा पुत्र तपसे विचलित होकर यहां आया है, नहीं तो यह क्यों आता? इस प्रकार विचार कर उसने परीक्षा लेनेके लिये दो आसन रक्खे। एक काठका और दूसरा रत्न जड़ित था। वारिषेण मुनि काठके आसनपर बैठ गये। जो सच्चे तपस्वी हैं वे शुद्धाचरणका सदा विचार रखते हैं।

इसके बाद वारिषेण मुनिने अपनी माताका सन्देह दूरकर अपनी समस्त स्त्रियोंको अपने सामने बुलाया। उसी समय उनकी सब स्त्री श्रृङ्गार कर सामने आकर हाथ जोड़ खड़ी हो गईं। उस समय वे अपनी सुन्दरतामें देव-सुन्दरियोंको मात कर रहीं थीं, उसी समय पुष्पडाल मुनिको सम्बोधित करते हुए वारिषेण मुनिने कहा, "देखो, ये मेरी स्त्रियां हैं, यही मेरा राज्य वैभव है, यदि संसारके भोगमें रहना चाहते हो तो तुम इन्हें स्वीकार कर विषय भोग भोगो। मुनिकी चोका देनेवाली बात सुनकर तथा उनका इस प्रकार का कर्तव्य देखकर पुष्प डालने लज्जासे अपना सिर झुका लिया। उसने हाथ जोड़कर निवेदन किया,"गुरुवर ! आप ही सच्चे तपस्वी मुनि हैं। आपने विषय-भोग रूपी भूतको भगा दिया है। आपने ही पवित्र जैन धर्मके तत्वोंको समझा है। प्रभो, आपके समान ही त्यागी महात्मा संसारके विषय-भोगोंसे परे रह वैराग्य धारण करते हैं। ऐसे दुर्लभ महात्माओंके लिये संसारमें कोई ऐसी वस्तु नहीं जो अलभ्य हो। देव मेरे समान कौन मूरख है जो तपके समान उत्कृष्ट मौलिक रत्न पाकर भी स्त्रीके लोभ-जालमें फंसा हुआ है। प्रभो, आपने बारह वर्षतक कठिन तपस्या कर अपना अमूल्य जीवन धन्य बनाया, वहाँ मैंने उतना समय व्यर्थमें खोया जिससे आजतक भी मेरे कलुषित हृदयमें संसारी मोह न जा सका। देव, मैंने बड़ा भारी अपराध किया है, अतः मेरे पापको प्रायश्चित्त द्वारा दूर कर मेरा अन्तःकरण पवित्र कीजिये। वारिषेण मुनि समझ गये कि अब इसे अपने कर्मोंके लिये पश्चाताप हो रहा है, इसका हृदय पवित्र हो गया, चलो, भाव परिवर्तनके साथ२ कितना सुन्दर

परिणाम निकला। इस प्रकार सोचकर उन्होंने कहा,— धर्मवीर ! तुम्हें अधीर नहीं होना चाहिये। कभी २ ऐसा देखा गया है कि पाप कर्मके कारण बड़े २ विद्वान तक किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाते हैं। तुम पवित्र राहपर चले आये, यही कितनी शुभप्रद बात है।

सच है, 'बुराईसे भी भलाई हो जाती है।' इस प्रकार कहकर उन्होंने पुष्पडाल मुनिका आवश्यक प्रायश्चित्त कर उन्हें धर्म मार्गमें दृढ़ किया। वे, गुरु महाराजकी कृपा कोरसे अपना आन्तरिक हृदय शुद्ध कर भीष्म प्रतिज्ञामें संलग्न हो रहे, उनके हृदयमें वैराग्य-का भाव पूर्ण रूपेण स्थिर हो गया, वे अपने शरीरकी तनिक भी परवा किये बिना, भूख-प्यास तथा अन्य कठिनसे कठिन कष्ट सहन कर पवित्र तपस्यामें लीन हो रहे। अतः जितने धर्मात्मा होते हैं वे किसी भी पथ-भ्रष्ट धार्मिक पुरुषको पवित्र धर्म मार्गमें बद्ध परिकर करते हैं। सच है, धर्मात्माका कर्त्तव्य है परोपकार करना, पथ-भ्रष्टको धर्म-मार्ग प्रदर्शन करना जिसके द्वारा वे स्वर्ग मोक्ष प्रदाता धर्म-वृक्षका मूल सींचते हैं। संसारके जीवोंके शरीर सम्पत्ति तथा कुल परिवार नाशमान है, जब इनकी रक्षा करनेसे सुखकी प्राप्ति होती है, तब, जिस धर्मके द्वारा अनन्त, अक्षय सुख मिलता है उसकी रक्षा करना कितना महत्वपूर्ण है, अतः जितने धर्मात्मा पुरुष हैं वे दुःखप्रद अहङ्कार छोड़, भव-सागरको पार करने वाले पवित्र धर्मकी सेवा करना अपना महान कर्त्तव्य सम-झते हैं। पाठकगण ! श्री वारिषेण मुनिका समस्त जीवन श्री जिन भगवान्‌की सेवामें ही व्यतीत हुआ, उन्होंने धर्म-मार्गसे विचलित होने वाले पुष्पडाल मुनिको दृढ़ कर दिया। वे ही धर्मात्मा

राजा श्रेणिक रानी चेलनी से बौद्ध गुरुओं को नमस्कार के लिये कहते हैं।

मुझे कल्याणके मार्गमें अग्रसर कर, आत्म-सुख प्रदान द्वारा भव-सागरसे पार करेंगे, यही मेरी कामना है.।

विष्णु कुमार मुनिकी कथा।

(१२)

"परम भक्त जिन प्रभुके सेवक, विष्णु कुमार हुए हैं।
वात्सल्य अंग पालन कर, मुनि दुख दूर किये हैं॥
ध्यान मग्न हो कर्म-नाशकर, मोक्ष-धाम सुख पाये।
वे ही भव-सागरसे मुझको, देवें पार लगाये॥

प्रिय पाठक! अवन्ति देशके उज्जयिनी नामक प्रसिद्ध नगरीमें राजा श्रीवर्मा राज्य करते थे। उनके शासनकालमें प्रजा सुख की नींद सोती थी। उनका जीवन धर्मके पवित्र भावोंसे ओत-प्रोत था। वे न्यायके पक्षपाती थे, अतः उनके राज्य-शासनमें दुराचारियोंकी नाकोंमें दम था। वे प्रबल योद्धा थे, प्रजाके ऊपर केवल न्याय-प्रेमसे शासन करना उनका ध्येय था। राजा श्रीवर्माकी रानी श्रीमती थी। वह अपूर्व सुन्दरी थी। वह दयाकी खान, विद्या की देवी थी। सबसे बढ़कर उसके हृदयमें दुखियोंके प्रति समवेदता भाव था। वह दुःखियोंके दुःख दूर करनेके लिये, जी जानसे कोशिश करती जिससे वह प्रजाके लिए दयालु महारानी' के नामसे विख्यात थी। उस समय महाराजके दरबारमें बलि, बृहस्पति, प्रहलाद और नमुचि नामक चार महानुभावोंसे एक मन्त्रिमण्डल

बना था। महाराजके चारों मन्त्री अपनो धार्मिक शत्रुताके लिये विख्यात थे। ऐसे पापियोंके साथ रहकर महाराज भयङ्कर पापोंसे युक्त चन्दन वृक्षके समान थे।

मन्त्रियोंकी हार।

एक दिनकी बात है कि ज्ञानी अकम्पनाचार्य देश-विदेशमें अपनी ज्ञान चर्चा सुनाते हुए अपने बृहत संघके साथ जिसमें सात सौ मुनियोंका जमाव था—उज्जयिनी नगरमें आये। आचार्यने अपने निमित्त ज्ञानसे उक्त नगरीकी अवस्था हानिकारक समझी। अतः उन्होंने अपने संघके मुनियोंसे कह दिया था कि कोई राजा या उसके आदमियोंसे वाद-विवाद न करे नहीं तो संघके ऊपर महान विपत्ति आनेकी सम्भावना है। गुरुकी इस प्रकारकी आज्ञा सुनकर समस्त मुनियोंने चुप रहना स्वीकार कर लिया। किसीने ठीक ही कहा है:—

वेही शिष्य प्रशंसा भाजन जो आज्ञा पालन करते।
गुरुमें श्रद्धा, प्रेम-विनयसे आदरके भाजन बनते॥
जो गुरुकी आज्ञाको मन-वच कर्म उल्लंघन करते हैं।
वे ही नीच शिष्य हैं जगमें, निन्दनीय बन रहते हैं॥

जिस समय स्वामी अकम्पनाचार्यके बृहत संघके आनेका समाचार मिला, नगरके अधिकाँश लोग, पूजाकी सामग्री लेकर मुनियोंके दर्शनके लिए चल पड़े। उस समय राजा श्रीबर्माने लोगोंको धूम-धामसे एक तरफ जाते देख, अपने मन्त्रियोंसे पूछा। मिन्त्रयोंने कहा,—"महाराज! यहांपर नंगे जैन मुनि आये हुए हैं,

जिनके दर्शन करने ये लोग जा रहे हैं।" महाराजने कहा, मन्त्रि-वर ! क्या ही अच्छा हो कि हम लोग भी मुनियोंके दर्शन कर कृतार्थ हों, अतः वहां चलकर उनका दर्शन करना आवश्यक है।" महाराजकी आज्ञानुसार, समस्त मन्त्री उनके साथ दर्शन करने गये। महाराजने समस्त मुनियोंको श्रद्धा-भक्तिके साथ नमस्कार किया। किन्तु अपने गुरुकी आज्ञा मानकर, समस्त मुनियोंको महाराजके नमस्कार करनेपर भी धर्मवृद्धि तक नहीं दी। सबके सब मौन रहे। महाराज, मुनियोंको ध्यानमें निमग्न देख, अत्यन्त प्रसन्न हो महलको लौट आये। रास्तेमें मन्त्रियोंने चुगली खानी शुरू की। "महाराज, इन मूर्ख मुनियोंकी चालबाजी देख ली। ये मौनावलम्बनकी आड़में, अपनी पोल खुलने देना नहीं चाहते। सच है, सर्वसाधारण जनता इनके मौनावलम्बनसे यही विश्वास करेगी कि ये बड़े तपस्वी हैं। किन्तु, इन मूर्खोंने मौन रह कर अपनी मूर्खता छिपानेकी अच्छी तरकीब निकाली है। महाराज ये ढोंगी हैं, मूर्ख हैं और सर्वसाधारणको मौनका धोखा देकर ठगने वाले पाखण्डी जो कपट जाल रचकर भोले-भाले धर्मभक्तोंको ठगते हैं।" इस प्रकार मन्त्री महाराजसे मुनियोंकी निन्दा कर रहे थे; इतनेमें उन्हें एक मुनि मिल गये जो नगरसे आहार लेकर संघ में वापस जा रहे थे। उन्हें देखकर मंत्रियोंने व्यङ्ग करते हुए महा-राजसे कहा, "महाराज, देखिये वह मुनि बैलके समान पेट भर कर आ रहा है।" उक्त मुनिने उनकी बात सुनकर जवाब देना निश्चय किया। यद्यपि उनके आचार्यकी आज्ञा थी कि संघका कोई मुनि राजाके किसी कर्मचारीसे वादविवाद न करे। परन्तु उक्त

मुनिने गुरुवरकी आज्ञा नहीं सुनी थी अतः उन्होंने अपने मनमें विचार किया कि ये अहंकारी मालूम होते हैं, इन्हें अपनी विद्याका घंमण्ड है, अतः इनके विद्याभिमानको तोड़ना चाहिये, इस प्रकार निश्चय कर उक्त मुनिने कहा, *"वृथा मूढ़ किमि गाल बजाई"* तुम व्यर्थमें क्यों चुगली खा रहे हो, यदि तुममें आत्मबल है या विद्या का प्रभाव हो तो तुम लोग मुझसे शास्त्रार्थ करो, तभी तुम्हें निश्चय हो जायगा कि कौन बैल है ? मन्त्री क्रोधित हो गये, भला एक साधारण मुनि उनका मान-मर्दन करे। अहंकारमें चूर होकर उन्होंने मुनिसे शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया। जिस समय मंत्री और मुनिके बीच शास्त्रार्थ हुआ उसी समय उन्हें ज्ञात हो गया कि इनके साथ शास्त्रार्थ क्या करना है लोहेका चना चबाना है। अन्तमें श्रुतिसागर मुनिने शास्त्रार्थमें मन्त्रियोंको हराकर अपने स्याद्वाद बलकी महिमा प्रकट कर दी। किसीने ठीक ही कहा है:—

जगके अन्धकारको तारागण क्या दूर भगा सकते।
एक दिवाकर तिमिर-राशिको पलमें सहज मेट सकते॥

मंत्रियों की दुर्दशा हुई

इधर श्रुतसागर मुनिने गुरुके पास आकर मार्गका समाचार कह सुनाया। आचार्यने उनकी (मुनि) बात सुनकर खेद प्रकट करते हुए कहा,"हाय, सर्वनाश उपस्थित हो गया। तुमने अपने हाथ से, संघके ऊपर कुठाराघात किया। देखो, तुमने मंत्रियोंसे शास्त्रार्थ कर संघकी इतनी हानि की जिसका वर्णन असम्भव है। अब, सर्वनाश सामने है। हां, कल्याणका यही मार्ग है कि तुम्हारा जहांपर

शास्त्रार्थ हुआ है वहां जाकर कायोत्सर्ग ध्यानकर समस्त संघकी रक्षा करो। धन्य हैं श्रुतिसागर मुनि जिन्हौंने समस्त संघको रक्षाके लिये हंसते २ कायोत्सर्ग करना स्वीकार कर लिया। वे उसी समय, उस स्थानपर जाकर ध्यानमें संलग्न हो रहे। उधर चारों मंत्री मुनिसे शास्त्रार्थसे हारकर उनकी जान लेनेपर उतारू हो गये। वे उसी दिन रात्रिके समय प्राण लेनेके विचारसे निकल पड़े। इतनेमें मार्गमें ही वही मुनि ध्यानस्थ अवस्थामें मिल गये। मंत्रियोंने अपने मनमें विचार किया कि चलो बड़े भाग्यसे शत्रु मिल गया। अब अपनी मान-हानि करने वालेको इस संसारसे मिटाकर अपने अपमानका बदला लिया जाय। इस प्रकार चारोंने सोचकर मुनिका शिर काट डालनेके लिये उनकी गर्दनपर तलवारका वार किया। किन्तु, धन्य हैं मुनिराज जिनके पुण्य-प्रभावसे पुर-देवीने उसी क्षण आकर, मुनिकी रक्षा कर ली, दुष्ट मंत्रियोंकी मुनिकी गर्दनपर खिंची हुई तलवारें ज्यों की त्यों रह गयीं। उनकी दुष्टताका दण्ड मिल गया। उधर समूचे नगरमें, मंत्रियोंकी दुर्दशाका समाचार बिजली की तरह फैल गया। समस्त नगर-निवासी उन्हें देखनेके लिये दौड़ पड़े। महाराज भी पहुंच गये। सब लोगोंने एक स्वरमें मंत्रियोंको धिक्कारना शुरू किया। सच है जो पापी निरपराध लोगोंको सताया करते हैं वे इस लोकमें उसका बदला अवश्य पाते हैं किन्तु मरनेके बाद वे नरकमें जाकर असह्य दुःखका दन्ड भोगते हैं। अतः महाराजने अपने दुष्ट मंत्रियोंकी दुष्टता देखकर धिक्कारते हुए कहा:—

"दुष्ट मंत्रियो! तुम्हारी दुष्टता मुझे अच्छी तरहसे याद है, अभी उस दिन तुम लोगोंने मेरे सामने ही जगतके उपकार करने वाले

सच्चे मुनियोंकी निन्दा की थी। किन्तु आज मैं देखता हूं कि तुम लोगोंने इन्हीं निर्दोष मुनिकी जानसे मारनेके विचारसे, तलवार उठाई थी। पापियो! तुम्हारे समान आततायियोंका मुंह देखना तक पाप है, तुम्हारे लिये प्राण-दण्ड देना उचित था किन्तु, मैं तुम्हारे ब्राह्मण होनेके ख्यालसे,—साथ ही तुम्हारे पूर्व पुरुष मंत्री पदपर रह चुके हैं, इस विचारसे मैं तुम्हें प्राण-दण्ड नहीं देता हूं, किन्तु सिपाहियो इन दुष्ट मंत्रियोंको गधेपर चढ़ा कर, अभी नगरसे ही नहीं वरन् मेरे राज्यकी सीमासे बाहर कर दो।" बस, उसी क्षण महाराजकी आज्ञाके अनुसार, उपरोक्त दुष्ट मंत्री गधेपर चढ़ाकर राज्य-सीमासे बाहर कर दिये गये। सच है. पापियोंको इसी प्रकार दण्ड मिलना चाहिये। जिस समय लोगोंने जिन धर्मका ऐसा अपूर्व चमत्कार देखा, उनकी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं था। वे आनन्दके मारे जय-जयकार करने लगे। अकम्पनाचार्यके संघ वालोंके चित्तमें आसन्न विपत्ति टल जानेके कारण शांति हुई। वहांसे उनका संघ दूसरी जगह चला गया।

मंत्रियोंकी हालत सुधरी।

प्रिय पाठकगण! निकाले हुए मन्त्रियोंका भाग्य-चक्र कैसे पलटा खाया उसका वर्णन दिया जाता है। हस्तिनापुर नामक नगरमें, महापद्म नामक राजा राज्य करते थे। उनके दो पुत्र-रत्न थे जिनका नाम पद्म और विष्णु था। एक दिनको बात है कि राजा हृदयमें, संसार की क्षणभंगुरताके कारण, वैराग्य-भाव उत्पन्न हो गया। राजा महापद्मके लिये, राज्य-सुख दुःखमय प्रतीत होने

हुआ, अतः उन्होंने अपने छोटे पुत्र विष्णुकुमारके साथ वनके लिये प्रस्थान किया! वहाँ पिता-पुत्रने श्रुतसागर मुनिसे दीक्षा ले ली। यद्यपि, राजाने अपने पुत्रको दीक्षा लेनेसे रोकनेका बहुत प्रयत्न किया किन्तु, उस बाल-योगी (विष्णुकुमार) के हृदयमें वैराग्यका भाव पूर्ण रूपेण विराजमान था जिससे पिताके लाख मना करने पर भी साधु होकर उसने तपस्या करना प्रारम्भ कर दिया। कुछ दिनों के बाद उन्होंने विक्रिया ऋद्धि प्राप्त कर ली। उधर पद्मराजके राज्य शासनमें, कुम्भपुर नरेशने विघ्न डालना प्रारम्भ किया जिससे राज्यमें सदा अशांति बनी रहती थी। सिंहबलके अधिकारमें एक मजबूत दुर्ग था जिसके बलपर वह उपद्रव करता और पीछे किलेमें छिप रहता। अतः उसके ऊपर किसी प्रकारसे आक्रमण करना असम्भव था। राजा पद्मराज, सदा चिंतित रहते, वे सोचा करते किस प्रकार उपद्रव शांत करें। इसी बीचमें, उज्जयिनी नगरीसे निकाले हुए चारों मंत्री हस्तिनापुर पहुँच गये। मंत्रियोंने राजाके कष्ट की बात सुनकर, कुछ सेना लेकर सिंहबाहु पर आक्रमण कर दिया। उसका किला अपने अधिकारमें कर मंत्रियोंने सिंहबाहुको गिरफ्तार कर राजा पद्मराजके दरबारमें हाजिर किया। राजा, मंत्रियोंकी वीरता, तथा चालाकी से प्रसन्न हुए। राजाने प्रसन्न होकर मंत्रियोंको अपना मन्त्री बनाया। इसके बाद राजाने उनसे विनम्र वचन कहते हुए कुछ मांगनेके लिये पुनः कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा,—बहादुर मंत्रियो! आप लोगोंने मेरे ऊपर जैसा उपकार किया है। उसका बदला देना असम्भव है, किन्तु आप लोग अपनी मनोभिलाषा प्रकट कीजिये। राजाको अपने ऊपर प्रसन्न देखकर

बलि नामक मन्त्रीने विनीत शब्दोंमें कहा,—"महाराज! हम आपकी कृपाके भारसे उपकृत हैं, किन्तु, आपके अनुरोधको हम टाल भी नहीं सकते, अतः इस समय हमें किसी चीजकी आवश्यकता नहीं है भविष्यमें आवश्यकता पड़नेपर हम आपसे याचना करेंगे,—अभी हमारा वचन भंडारमें रहे।"

बदले का भाव।

पाठकगण, कुछ समय बाद श्री अकम्पनाचार्य का संघ अनेक स्थानोंमें घूमता हुआ हस्तिनापुरके बगीचेमें पहुंच गया। मुनिराजके शुभागमनका संवाद सुनकर नगर-निवासी उत्साहके साथ वन्दना करनेके लिये वहां गये। उसी समय, राजमंत्रियोंने आचार्यके आनेकी बात सुनकर क्रोधित होकर बदला लेनेका विचार किया। मंत्रियोंमेंसे एकने कहा, भाई, यही मौका है राजासे अपनी मनोभिलाषा प्रकट करनेका। देखो, अभी तक अपमानसे मेरा कलेजा जल रहा है। भाई, इन्हीं दुष्ट साधुओंने हमे राज्यसे निकलवा कर बाहर कराया, हमारी दुर्दशा कराई, हमें गधेपर चढ़ा कर देश-निकाले का दण्ड दिया गया है। भला कहो, अब कौनसी दुर्गति रह गई है। आज, इन्हीं दुष्टोंके कारण हम अपमानित जीवन व्यतीत कर रहे हैं, अतः ऐसे समयको अपने हाथसे नहीं जाने देना चाहिये, हमें अपना पूरा बदला लेना चाहिये। दूसरेने कहा, राजा तो इनका भक्त है वह कैसे इनकी दुर्दशा होने देगा। भाई, कोई ऐसा प्रयत्न किया जाय जिसमें बदला लेनेका स्वर्ण सुअवर हाथसे न निकल जाय! इतनेमें बलिने प्रसन्न चित्तसे कहा,—"तुम

लोग किस चिंतामें फँसे हो, अभी हम लोगोंने राजाके प्रबल शत्रु सिंहबलको पकड़ कर उनके ऊपर कितना उपकार किया है, अभी उसके बदलेमें राजा हमे पुरस्कार देनेका बचन दे चुके हैं। अतः, क्याही अच्छा हो कि हम उनसे सात दिनके लिये राज्य-शासन-सूत्र अपने हाथमें ले लेवें, उसी बीचमें हमारा मतलब सिद्ध हो जायगा, और राजा भी बचन बद्ध होनेके कारण हमारे काममें दखल न दे सकेगा। बस, हमारा बदला पूरा हो जायगा।" सबने मन्त्री बलिके प्रस्तावका समर्थन किया। सर्व सम्मतिकी रायसे बलिने राजाके पास जाकर निवेदन किया,—"दीनबन्धु, अब वह समय आ गया है जिसमें आपके बचनकी पूर्त्ति होनी चाहिये, आपने कृपाकर हमे जो बचन दिये हैं उसके अनुसार काम करनेका समय आ गया है। अतः आप मेरी अभिलाषा पूर्ण करें।"

सात दिनकी बादशाहत।

राजा वचन बद्ध थे। उन्हें क्या खबर थी की ऐसे समयमें कोई छल प्रपञ्चका कार्य होगा। वे विचार करने लगे कि इन लोगोंने मेरे साथ कितना उपकार किया है उसके लिये मैंने इसकी मनोभिलाषा पूर्ण करनेका बचन दिया है अतः उस ऋणसे उऋण होकर अपना वचन पालन करना चाहिये। इस प्रकार अपने मनमें विचार कर राजाने मंत्री बलिसे कहा,—"मैं प्रसन्न हूं, तुम अपने मनकी अभिलाषा प्रगट करो मैं उसे पूर्ण करनेके लिये प्रस्तुत हूं।" बलिने दृढ़तासे कहा,—"महाराज यदि, आप अपने बचनका पालन करना चाहते हैं तो कृपाकर सात रोजके लिये अपने राज्य शासनका

भार हमें दीजिये, इसीमें हमारा उपकार होगा और आपकी प्रतिज्ञा पालन। राजा वलिकी अभिलाषा सुन कर आश्चर्य-सागरमें गोता खाने लगे—किन्तु, अब पछताये होत क्या चिड़िया चुग गई खेत। लाचार होकर राजाने बलिके हाथमें सात दिनके लिये अपने राज्य-शासनका भार सौंप दिया, यद्यपि उनके हृदयमें किसी भावी-विपत्ति को आशङ्का हो रही थी। बलि को प्रसन्नता का ठिकाना नहीं था, अब तो वह सात दिनका शाहंशाह था।

प्राण लेनेका षड्यन्त्र।

कपटी मंत्रियोंने राज्य-शासनका सूत्र अपने हाथमें आया हुआ देख मुनियोंके प्राण लेनेके लिये यज्ञ करनेका वहाना किया, जिससे किसीके मनमें अनिष्ट की आशङ्का न हो। मंत्रियोंने संघके समस्त मुनियोंको यज्ञ-मण्डपके बीचमें स्थान दिया। उनके चारों ओर ईंधन जमा कर दिया गया। वेद की ऋचाओं द्वारा यज्ञ आरम्भ किया गया। उसो समय, हजारों निरपराध पशुओंका वलिदान हुआ तथा उनकी अहुति दी जाने लगो। देखते २ दुर्गन्धके मारे वहां रहना असम्भव हो रहा है। दुर्गन्धित धुएंसे आकाश मण्डल इस प्रकार व्याप्त हो गया मानो इस महापापको न देख सकनेके कारण सूर्य अस्त हो गया हो। इस प्रकार, उस समय राक्षस राज्य का दौर दौरा शुरू हो गया। उस समय, समस्त मुनि समुदाय भयंकर उपसर्ग सहन करने लगा। संघके समस्त मुनि मेरु-पहाड़के समान अचल रह कर ध्यान-मग्न होकर जिनेन्द्र देव का ध्यान करने लगे। उन्होंने इसे अपने कर्मोंका फल समझ अपने हृदयको मज़बूत वना निम्नलिखित भावनाका प्रकाश किया।

चाहे मित्र शत्रु हो कञ्चन, काय, महल या हो श्मशान।
निन्दा-स्तुति हो अर्घ वतारन, असि प्रहार सब एक समान॥

सच है, सच्चे जैन-साधु भयंकरसे भयङ्कर दुःखोंका सामना करनेमें भी नहीं हिचकते। वे भला ऐसे कष्टोंसे क्यों घबड़ाने लगे। यह सभी जानते हैं:—

पाण्डवों को शत्रुओंने दुःख क्या कुछ कम दिया।
हर तरह से कौरवोंने खुलके निज बदला लिया॥
अग्नि की ज्वालामें जलकर वे नहीं विचलित हुए।
धैर्यसे निज शत्रओंके कष्ट पाण्डवने सहे॥
जैन सच्चे हैं तपस्वी वे न भय खाते कभी।
कष्ट की ज्वालामें जल कर दृढ़ सदा रहते सभी॥

पाठकगण! सच्चे जैन तपस्वी अपने ऊपर आनेवाले भयङ्कर कष्टोंसे नहीं घबड़ाते। वे धीरतासे समस्त कष्टोंको सहकर अपने मार्गपर दृढ़ रहते हैं—किन्तु, इसके विपरीत जिनका हृदय कमजोर होता है वे राग-द्वेषादि शत्रुओंका सामना नहीं कर सकते। वे थोड़े दुःखोंको देख कर विचलित हो जाते हैं भला, ऐसे लोग साधुता की क्या रक्षा करेंगे? तथा वे आत्म हित भी नहीं कर सकते हैं जो कष्टोंकी आंच नहीं सह सकते वे समताकी रक्षा कैसे करेंगे?

कष्टसे छुटकारा।

पाठकगण! हस्तिनापुरमें मुनियोंके ऊपर इसप्रकार की कष्ट की घटा घिर आयी थी। उधर मिथिलामें श्री श्रुतसागर मुनि अपने निमित्त ज्ञानसे मुनियोंके ऊपर आये हुए कष्ट ज्ञात करनेपर

उनके मुंहसे अकस्मात् हाय २ शब्द निकल पड़ा। अरे ! मुनियोंको इतना कष्ट हो रहा है। उस समय वहांपर पुष्पदन्त नामक क्षुल्लक मौजूद थे, उन्होंने महामुनिसे पूछा,—"मुनिराज ! किस स्थान पर मुनियोंके ऊपर उपसर्ग हो रहा है ?" मुनिराजने कहा;— हस्तिनापुरमें श्री अकम्पनाचार्यके सात सौ मुनियोंके संघके ऊपर दुष्ट बलि द्वारा कष्ट दिया जा रहा है। क्षुल्लकने कहा,—"देव ! कौनसा उपाय है जिससे मुनियोंका कष्ट दूर हो।" मुनिराजने कहा,—"हां, एक उपायसे कष्ट दूर हो सकता है, श्री विष्णुकुमार मुनि विक्रिया ऋद्धिके साधक हैं व अगर चाहें तो अपनी ऋद्धिके बलसे कष्ट दूर कर सकते हैं। पुष्पदन्त बिना बिलम्ब किये, विष्णुकुमार मुनिके पास पहुंच गये। पुष्पदन्तने उनसे मुनियोंके ऊपर होनेवाले कष्ट कह सुनाये। पहिले विष्णुकुमार मुनिको विश्वास नहीं हुआ, किन्तु, जब उन्होंने अपना हाथ फैला कर देखा तब उनका हाथ बहुत दूर तक चला गया। वे उसी क्षण अविलम्ब हस्तिनापुर चले आये। अपने भाई पद्मराजको सम्बोधित करते हुए कहा, "प्रिय भाई ! आपने यह क्या किया ? हाय २ आपके देखते देखते तपस्वी मुनियोंपर इस प्रकार अत्याचार हो और आप अत्याचार होता रहे तथा खड़े २ तमाशा देखते हैं। क्या आपको मालूम है कि आपके नगरमें ही निर्दोष मुनियोंके ऊपर अनाचार हो रहा है। सोभो आपके समान धर्मात्मा पुरुषके सामने। क्या आप समझते हैं इस प्रकारका अत्याचार हमारे कुलवालोंके शासनमें अभी तक कभी हुआ था जो आपके शासनमें हो रहा है। आप सोचिए सच्चे तपस्वी मनि किसीका क्या लेते हैं ? वे तपस्यामें लीन रहते हैं, उन-

के ऊपर जुलम होनेसे आपके ऊपर घोर संकट आनेकी सम्भावना है। क्या आप नहीं जानते कि राजाका क्या कर्त्तव्य है ? सज्जनो, मुनियोंकी रक्षा करना और जुलम करने वाले जालिमोंको दण्ड देना। किन्तु आपके राज्य शासनमें बिलकुल उल्टी गंगा बह रही है। क्या आप नहीं जानते कि ठंडा जल भी गरम होकर शरीर जलाने लगता है। अतः आप इस अत्याचारको रोकिये। नहीं तो आपको भयंकर दुःखका सामना करना पड़ेगा। अपने प्रिय भ्राता मुनिराजके महत्वपूर्ण शिक्षायुक्त उपदेश सुनकर राजा पद्मराजने विनीत शब्दोंमें कहा,—मुनिराज ! मैं इस समय प्रतिज्ञाके कठिन वन्धनमें जकड़ा हुआ हूं, लाचार हूं अतः वेइख्तियार हूं। हाय ! मुझे क्या पता था कि ये छली मुझसे वचन लेकर तपस्वी निर्दोप मुनियोंके ऊपर जुलम-सितम ढा देंगे। मैंने सात दिनके लिए उन्हें राज्य-शासन भार दे रखा है, अतः उतने दिनों तक उनकी मनमानी वरदास्त करनी पड़ेगी। अतएव मुनिराज, आप ही कोई ऐसा उपाय कीजिये जिसमें मुनियोंका कष्ट दूर हो जाय। आप हर तरहसे समर्थ हैं जैसा चाहें वैसा कर सकते हैं। देर करना उचित नहीं है। विष्णुकुमार मुनि प्राप्त ऋद्धिके प्रभाव से बावन ब्राह्मणका वेष बना कर, वेदके मंत्र उच्चारण करते हुए बलिके यज्ञ मण्डपमें पहुंच गये। उस समय वहांपर जितने लोग उपस्थित थे सभी नवागत ब्राह्मणके मुंहसे वेद मन्त्र सुनकर मंत्र मुग्ध हो गये। बलिके आनन्दका ठिकाना नहीं था। बलिने विह्वल होकर कहा, हे ब्राह्मण ! मैं आपके शुभागमनके लिये आपका सहर्ष स्वागत करता हूं। आपने यज्ञ-मण्डपमें आकर बड़ी कृपा की है,

अतः आज मैं आपके ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हूं, इस समय आप जो कुछ माँगना चाहे मांग सकते हैं मैं सहर्ष देनेको प्रस्तुत हूं।

तीन डग भूमिकी इच्छा

बलिकी बात सुनकर विष्णुकुमार मुनिने आश्चर्य प्रकट करने वाली बात कही—दयालु, मेरे समान एक गरीब आदमी अपनी ग़रीबीमें ही संतोष करता है। मुझे, धन-दौलत माले-खजाना नहीं चाहिए। मुझे अपनी ग़रीबी ही मुबारक हो। किन्तु, यदि मैं आप की बात नहीं रक्खूं तो भी ठीक नहीं। अतः यदि आप मुझे तीन डग ज़मीन देनेकी कृपा करें तो मुझ ग़रीब ब्राह्मणका बड़ा उपकार हो। कृपालु, बस उसीमें अपनी झोंपड़ी बनाकर वेदका स्वाध्याय करूंगा। यदि आपने इतनी दया दिखाई तब मैं निश्चिन्त हो जाऊं गा। यदि आप मुझे कुछ देना चाहते हैं तो तीन डग ज़मीन दीजिये इसके अतिरिक्त मुझे और कुछ नहीं चाहिए।" अन्य ब्राह्मणोंने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा,—"महाराज, आपने यह क्या किया, क्या आप इतने संतोषी हैं जो इतनी छोटी चीज़ मांग रहे हैं। अभी क्या बिगड़ा है आपको अपने लिए भले ही कुछ नहीं चाहिए किन्तु हम जाति भाइयोंके लिए ही कोई बड़ी मांग पेश कीजिए। बलिने भी आश्चर्यके भावमें कहा,—हां महाराज! आपने यह क्या किया? मैंने विचार किया था कि आप कोई अच्छी चीज़ मांगेंगे। कमसे कम मेरी योग्यताका ख्याल कर ही मांगते। परन्तु आपने तीन डग ज़मीन मांगकर मुझे हताश कर दिया। क्याही अच्छा हो कि आप फिरसे कोई दूसरी चीज़ मांगे जो मेरे सामर्थ्यके अनुकूल हो। मैंने

आपको देनेका बचन दे दिया है, अतः आप फिरसे मांगकर अपने मनकी मुराद पूरी कर सकते हैं। मैं फिरसे आपको मौका दे रहा हूं, आपके लिए स्वर्ण-सुअवसर है। अतः आप फिरसे अपनी मांग पेश कीजिए मैं उसे पूर्ण करनेके लिए प्रस्तुत हूं। बलिकी इस प्रकार की बात सुनकर श्रीविष्णुकुमार मुनिने निर्भीकतासे आदर दिया,— दाता ! मैंने जो कुछ आपसे मांगा है उसके अतिरिक्त मुझे अन्य वस्तुकी आवश्यकता नहीं। यदि आपको देना हो तो, यहांपर अन्य ब्राह्मण मौजूद हैं उन्हें दान देकर अपने मनकी अभिलाषा पूर्ण कीजिये। मैं चाहता हूं सिर्फ तीन डग ज़मीन।" बलिनें कहा,— 'अच्छी बात है लीजिये संकल्प-जल' ऐसा कह उसने संकल्प-जल उक्त मुनिके हाथमें दे दिया। इसके बाद उन्होंने एक डगमें सारी पृथ्वी नाप ली। दूसरे डगमें। याने उनका एक पैर सुमेरु गिरिपर था और दूसरा पैर मानुषोत्तर पहाड़पर। अब, तीसरा पैर कहां रक्खें कहीं स्थान ही नहीं। उसी समय उनके प्रभावसेः—

"कांप उठी पृथ्वी उस क्षण, पर्वत भी कम्पित आज हुये।
मर्यादा तज दी सागरने, महा प्रलय से भान हुए॥
देव ग्रहोंके रथ आपसमें, ही टकराते थे कैसे।
मानो भूमंडलपर उस क्षण, प्रलय दृश्य होता जैसे॥

उसी समय, स्वर्गसे देवोंने विष्णुकुमार मुनिके पास आ बलि को बांधकर विनम्र शब्दोंमें कहा, 'प्रभो! क्षमा कीजिए इसी दुष्ट के कारण ऐसी घटना हुई है, बलिने मुनिराजके चरणोंपर गिरकर अपने अपराधोंको क्षमा कराया तथा अपने दुष्कर्मपर हार्दिक पश्चा-ताप किया। अन्तमें मुनियोंका कष्ट दूर हुआ। उसी समय राजा

तथा चारों अभिमानी मंत्रियोंने आचार्यके पास जाकर अपने अपराध क्षमा कराये। सब, उसी क्षण जिनेन्द्र भगवानके भक्त हो गये। सबने अपने हृदयसे मिथ्याभिमान दूरकर दिया। जैन धर्मकी ऐसी महिमा है। इसके वाद देवताओंने प्रसन्न होकर लोगोंको तीन बीणा इसलिये दी जिनके द्वारा उनके यशका गायन कर पुण्यका कार्य होगा। पाठक गण! जिस प्रकार विष्णकुमार मुनिने वात्सल्य अंगका पालन कर अपने सहधर्मियोंका उपकार किया है उसी प्रकार संसारके अन्य श्रेष्ठ जन परोपकार-कार्य द्वारा यशके भाजन बनेंगे। विष्णुकुमार मुनिने जिस प्रकार जिन भगवानकी भक्तिकर प्रेममें लीन होकर मुनियोंके कष्ट दूर किये, अंतमें तपस्या द्वारा अपने कर्मोंका नाशकर वे मोक्षवासी हुये। अतः मैं (लेखक) प्रार्थना करता हूं कि वे हो मुनिराज मझे भव-सागरसे पारकर मोक्ष-रत्न प्राप्त करावेंगे ऐसी आशा है।
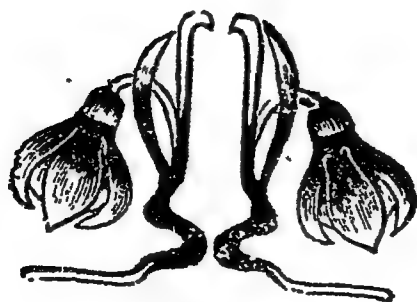
बौद्ध साधुओं की परीक्षा

वज्र कुमारकी कथा।

(१३)

श्री जिन प्रभुके परम चरणमें नमस्कार कर जाता हूं।
वज्रकुमार सुमुनिकी रोचक कथा स्वतन्त्र सुनाता हूं॥
जो निज विकट तपस्या बलसे स्वर्ग मोक्ष सुख पाये हैं।
प्रभावनांगके पालन करने वाले सुख उपजाये हैं।

प्रिय पाठक ! किसी समय हस्तिनापुर जिसे आज कल इन्द्र-प्रस्थ कहते हैं,—में राजाबल राज्य करते थे। वे प्रकाण्ड विद्वान थे तथा राजनीति-विशारद थे। उसी तेजस्वी राजाके गरुड़ नामक मन्त्रीका सोमदत्त नामक पुत्र था। सोमदत्त विद्वान था, उसके रूप गुणको देखकर सभी उसपर मुग्ध हो जाया करते थे। एक दिनकी बात है कि वह अपने मामाके पास गया। उसका मामा अहिक्षत्र-पुरमें निवास करता था। उसने अपने मामासे निवेदन किया, मामा साहब, मैं यहांके राजाका दर्शन करना चाहता हूं अतः कृपा कर आप उनसे परिचय करा देवें।" सुभूति (मामा) मिथ्याभि-मानके कारण महाराजके पास उसे नहीं ले जा सका। सोमदत्त समझ गया कि उसका मामा अपने मिथ्याभिमानके कारण उसे राजाके पास नहीं ले जा रहा है। अतः वह स्वयं महाराजके पास चला गया। उसने अपनी विद्वताके बलसे मन्त्री पद प्राप्त कर लिया अतः अपने पुरुषार्थ-बलका ही भरोसा रखना चाहिये जिससे बड़े से बड़ा कार्य सफल हो सकता है। अपने भानजेकी विद्वता देख

कर सुभूतिने अपनी कन्या यज्ञदत्ताकी-शादी कर दी। इस प्रकार युगल दम्पति आनन्दसे अपना समय व्यतीत करने लगे। फल स्वरूप उसकी पत्नी गर्भवती हुई। जब उसे चार मासका गर्भ रहा तब उसने स्वप्न देखा। गर्भकालीन अवस्थामें स्त्रियां स्वभावतः स्वप्न देखा करती हैं। अतः उसने आम खानेका निश्चय किया।

आमकी खोज।

उस समय आम फलनेका समय नहीं था। किन्तु, सोमदत्त कुसमयमें ही आम लानेके लिये वनमें चल पड़ा। सच है, जो बुद्धिमान होते हैं वे असमयकी अलभ्य वस्तु पानेके लिये प्रयत्न करते हैं। वनमें पहुंचते ही उसने क्या देखा कि समूचे वनमें आमका एक पेड़ फला हुआ है। उसके नीचे एक तपस्वी बैठे हुए थे। सोमदत्तने अपने मनमें विचार किया कि आश्चय है इस समूचे वनमें एक वृक्ष फलसे लदा हुआ है, अतः इन्हीं तपस्वीके प्रभावसे असम्भव बात सम्भव हुई है। उसने पेड़से आम तोड़कर घर भेज दिये। इसके बाद मुनिराजके पास आकर उसने 'संसारके सार' पदार्थ जाननेकी उत्कंठा प्रकट की। महामुनिने कहा,—प्रिय, संसारमें आत्माको कुमार्गसे बचानेवाला सार पदार्थ धर्म है। वह दो प्रकार का होता है, जिसे मुनि और श्रावक धर्म कहते हैं। मुनिके निम्नलिखित लक्षण हैं:—

अहिंसा, सत्य-भाषण, ब्रह्मचर्य-पालन, अचौर्य और परिग्रह-परित्याग पांच महाव्रत हैं। इसके अतिरिक्त, उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप इत्यादि धर्मके दश लक्षण हैं:—इसके अतिरिक्त सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र

तीन रत्न, पांच प्रकारकी समिति, तीन तरहकी गुप्ति, खड़ा होकर आहार ग्रहण करना, स्नान नहीं करना, सिरके बालोंको हाथोंसे लोंच करना तथा शरीरमें वस्त्र न रखना इत्यादि लक्षण हैं। श्रावक धर्ममें, बारह तरहके व्रतका विधान है। जिनेश्वरकी पूजा, पात्रोंको दान देना, परोपकार, निन्दा तथा किसीकी हानि न करना तथा शान्तिमय जीवन बिताना है। वत्स! मुनि धर्मका पालन सर्वदेश में होता है किन्तु श्रावक धर्मका पालन एकदेशमें होता है। उदाहरणके लिये अहिंसा व्रत ले लो। उसका पालन सर्वदेशमें होगा। याने मुनि, स्थावर जीवोंकी हिंसा नहीं कर सकते, किन्तु श्रावक इसका पालन मोटे रूपमें करेगा। (स्थूल-भावमें) उसे त्रस जीवों की हिंसासे परे रह वनस्पतिके सम्बन्धमें काम लाने योग्य चीजको अपने काममें लाकर अन्यकी रक्षा करना होगा। श्रावक धर्म परम्परा रूपसे मोक्षका आधार है किन्तु मुनि धर्म द्वारा उसी पर्यायसे मोक्ष प्राप्त हो सकता है। अतः जो श्रावक धर्म पालन करते हैं उन्हे मुनि धर्मको भी पालन करना होता है, नहीं तो मोक्षकी प्राप्ति असम्भव है। तुम निश्चय जानो कि आवागमनका कष्ट बिना मुनि धर्म धारण किये दूर नहीं होता किन्तु, इसमें भी एक विशेषता है कि सभी मुनि धर्म वाले मोक्ष-वासी नहीं होते। सबके लिये परिणामानुसार फल मिलता है। जिसका जैसा परिणाम होगा उसे वैसा फल मिलेगा। जो राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया लोभ [illegible] आत्म-शत्रुको जिस मात्रामें नाश करनेमें समर्थ होता है [illegible] हिसावसे मोक्ष-धामका अधिकारी होता है, किन्तु [illegible] ही मोक्षकी प्राप्ति होती है, किसी अन्यसे नहीं।

बालक वज्रकुमार ।

मुनिराजके मुंहसे धर्म-सम्बन्धी विश्लेषण सुन कर सोमदत्तने मुनिधर्मको ही सर्वोत्कृष्ट धर्म समझ उसे ग्रहण करनेका दृढ़-निश्चय किया। उसने सर्व-पापनाशक मुनि-धर्म स्वीकार कर लिया। सोमदत्तने अपने गुरुके पास रह पूर्ण रूपेण शास्त्राभ्यास किया, इसके बाद वे नाभिगिरी पहाड़ पर तपस्या करने चले गये। सोमदत्त मुनि वहां पर रह कर कठिन तपस्या करने लगे। उधर समयानुसार यज्ञदत्ताके एक सुन्दर बालक हुआ। वह अत्यन्त प्रसन्न हुई। उसने किसी आदमीके मुंहसे नाभिगिरी पर अपने पतिके रहने की बात सुनी, वह अपने परिवारवालोंको लेकर उक्त पहाड़ पर गयी। वहाँ जाकर उसने अपने पतिको मुनिवेषमें सूरज की तरफ मुख किये तापस योग करते देखा। उसी समय, यज्ञदत्ता क्रोधमें आग बबूला हो गयी। उसने क्रोध पूर्ण शब्दोंमें गर्ज कर कहा,—"नराधम कहींका, मुझसे व्याह कर तपस्या करने आया है, अब, बताओ यदि, तुम्हें तप करना था तो मुझसे शादी क्यों की, मेरा जीवन बर्बाद क्यों किया। भला मैं किसके आश्रयमें जाकर रहूं। इस बालक की देख-रेख कौन करेगा? यह काम मुझसे नहीं होगा। ले, तू ही इसका लालन-पालन कर।" इस प्रकार दुर्वचन कह वह अपने हृदयके अनमोल हीरेको मुनिराजके पैरोंपर निराश्रित पटक कर घर चली गयी। वह कितनी कर्कशा थी जिसका हृदय अपने लख्ते जिगरके टुकड़ेको, नन्हें बच्चेको इस प्रकार पहाड़ पर जंगली हिंसक जीवोंकी खुराक बनानेके लिये छोड़ते समय टुकड़ा २ नहीं हो गया! सच है जब कर्कशा स्त्री क्रोधके वशमें हो जाती है तब

वह क्या २ अनर्थ नहीं कर देती ? पाठक गण ! अपने कलेजेपर हाथ रख कर मांकी ममता देखें जिसने अपने प्रिय संतानके प्रति इस प्रकारका दानवी-व्यवहार किया ।

बालक का रक्षक ।

प्रिय पाठक, आप लोगोंने अभी २ माता यज्ञदत्ताके क्रूर अत्याचारकी कथा पढ़ी है, अब आगे बढ़िये दिवाकर देव नामक दयालु विद्याधरने उस नवजात शिशु की रक्षाकर अपनी विशाल सहृदयता का परिचय दिया जो स्वयं अपने छोटे भाई द्वारा राज्यसे वंचित होकर अपनी स्त्री सहित तीर्थ-यात्रामें निकल पड़ा था। वह अपरावतीका भूत पूर्व राजा था । उसके छोटे भाई पुरन्दरने उसे लड़ाईमें हरा कर भाग जानेके लिये मजबूर किया। दिवाकर संयोगवश मुनिराजके दर्शनार्थ पहुंच गया । उसने मुनिराजके सामने एक तेजस्वी बालकको हँसते २ क्रीड़ा करते हुए देखा । उसने नन्हें लड़केको गोदीमें लेकर अपनी स्त्री के हाथमें देकर कहा,—"प्रिये ! आज हमारा जीवन धन्य हुआ जो ऐसा सुन्दर बालक मिला। युगलदम्पति, भाग्यसे बालक-रत्न पाकर फूले नहीं समाये । बालक देखनेसे भाग्यशाली जान पड़ता था, उसके हाथमें वज्रका चिन्ह था जिससे उसका नाम वज्रकुमार रक्खा गया । इसके बाद पति-पत्नीने मुनिराजके चरणोंमें श्रद्धा भक्तिसे नमस्कार कर अपनेको कृतार्थ समझा । बालक लेकर वे घर चले आये । देखिये, यज्ञदत्ताने अपने प्रिय लड़के को निराश्रित छोड़ दिया किन्तु जिन भगवान की कृपा देखिये, उस घोर जंगलके पहाड़ पर अबोध शिशुका रक्षक चला गया । किसीने सत्य कहा है:—

"जोजन अपने पूर्व जन्ममें पुण्य-धर्म कर आते हैं।
निश्चय जानो, धर्मनिष्ठ वे कभी न दुखको पाते हैं॥"

बालक वज्रकुमार दिन २ दूना बढ़ने लगा। उसके सुन्दर बाल-रूपको जो कोई देखता, वह मंत्र मुग्ध हो जाता। इस प्रकार वह सबको आनन्दित करने लगा।

विवाह कैसे हुआ ?

वज्रकुमार अपने मामा (दिवाकर का साला) राजा विमल-वाहनके यहां—जो कनक पुरीका राजा था,—रह कर थोड़े दिनोंमें शास्त्राध्ययन कर उद्भट विद्वान् हो गया। सभी उसकी प्रखर बुद्धि देखकर आश्चर्य चकित हो जाते थे। एक दिनकी बात है कि वज्रकुमार एक पहाड़ पर घूमनेके लिये चला गया। वहांपर गरुड़ वेग विद्याधर की कन्या पवनवेगा किसी विद्याकी सिद्धि कर रही थी, इतनेमें हवाके झोंकेसे उड़कर एक कांटा उसकी आंखमें पड़ गया जिससे दुःखी होकर उसका हृदय चञ्चल हो गया। संयोगसे वज्रकुमार उसी राहसे निकल पड़ा, उसने उसकी आंखसे कांटा निकाल उसका सन्ताप दूर कर दिया जिससे प्रसन्न होकर कन्या विद्या-साधनामें संलग्न ही रही। समयानुसार उसने सिद्धि प्राप्त कर ली तब उपकार करने वाले वज्रकुमारके पास आकर निवेदन किया,—"कृपालु, यह आपके ही उपकारका फल है कि मैंने विद्या-साधना कर ली है, यदि आप उपकार नहीं करते तो मैं साधनामें अकृतकार्य रहती। किन्तु आपके उपकारका बदला देना मेरे लिये कठिन है क्षुद्र प्राणी हूं ? किन्तु मैंने अपना तुच्छ जीवन आपकी दासी स्वरूप बननेके लिये

समर्पित कर दिया है। देव, मुझे अपनाकर अपनी विशाल सहृदयताका परिचय दीजिये। देव, मैंने अपने मनमें ध्रुवसा निश्चय कर लिया है कि मैं इस जन्ममें आपके अतिरिक्त किसी अन्य पुरुषसे व्याह नहीं करूँगी।" इस प्रकार कह कर वह वज्रकुमारकी आज्ञा सुननेके लिये खड़ी हो रही। वज्रकुमारने उस कन्याकी बात सुन कर उसके प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। शुभ-मुहूर्तमें दोनोंका विवाह हो गया। वे विवाहके पवित्र सूत्रमें बंध कर सुखसे समय बिताने लगे।

वैराग्य धारण।

अब वज्रकुमार छोटा बालक नहीं रहा बल्कि नवजवान हो गया। एक दिन संयोगसे उसने ज्ञात कर लिया कि उसके चाचाने अपने बड़े भाईको राज्यसे बाहर कर आप राजा बन गया है। उसने एक छोटीसी फ़ौज लेकर अमरावती नगरीके ऊपर चढ़ाई कर दी। उधर, पुरन्दर देव निश्चिन्त था। वज्रकुमारने उसे हरा कर बन्दी बना दिया। अब दिवाकर देव राजा हुआ। जबसे वज्रकुमारने अपने पराक्रमसे पिताको राजा बनाया तबसे सभी लोग उसकी प्रशंसा करने लगे, उसके नामका इतना प्रभाव पड़ गया था कि बड़े बड़े नामी, शूरवीर उससे भयभीत होने लगे। किन्तु, भाग्यचक्रका फेर देखिये, वही वज्रकुमार संयोगसे वैराग्य धारण कर लेता है जिसका वर्णन नीचे दिया जाता है। जबसे राजा दिवाकर देव की स्त्रीके एक पुत्र उत्पन्न हुआ तबसे उसके हृदयमें वज्रकुमारके प्रति दुर्भावना होने लगी। वह सोचती, इसके सामने

मेरे पुत्रको कैसे राज-गद्दी मिलेगी। यदि, राजाने मेरी बात स्वीकार कर ली, तौभी इस वज्रकुमारके मारे मेरा पुत्र राजगद्दीपर नहीं बैठ सकता, अतः इस कण्टकको यहांसे उखाड़ फेकना चाहिये तभी मेरे पुत्रका मार्ग निष्कण्टक होगा। नहीं तो किसीने सच कहा है :—

"क्या ऐसा है कोई जगमें सच्चा त्याग दिखायेगा।
आनेवाली श्री सम्पति को पैरोंसे ठुकरायेगा॥
यह संभव है नहीं सभी निज मतलबके दीवाने हैं।
सुख वैभवके इच्छुक सब हैं नहीं साधुके बाने हैं॥
वज्रकुमार, पुत्रके पथमें, रोड़ा ना अटकायेगा।
यत्न करूं जिसमें वह जल्दी, इस गृहसे हट जायेगा॥

एक दिन वज्रकुमारने अपनी माताके मुंहसे यह कहते हुए सुना, 'देखो, वज्रकुमार बड़ा दुष्ट है, कहां पैदा हुआ और कहां दुःख देनेके लिये आ बैठा।' माताके मुंहसे ऐसी आश्चर्य जनक बात सुनकर उसके हृदयमें ज्वाला जलने लगी। वह समझ गया कि इस घरमें अब एक क्षण भी रहना नर्क-वासके समान है। उसने पिताके पास जाकर विनम्र शब्दोंमें कहा,—"पिताजी! मैं जानना चाहता हूं कि मेरे सच्चे माता पिता कौन हैं, वे कहाँ रहते हैं? मैं आपके यहां कैसे आ गया। पिताजी, आपने मेरा लालन-पालन पिताके समान किया है किन्तु आप कृपाकर मेरे माता पिताके सम्बन्धमें सारी बातें बता दीजिये। यह निश्चय समझें यदि आप मुझे नहीं बतायेंगे तो मैं खाना-पीना सब छोड़ दूंगा।" दिवाकर देवने चौंककर कहा,—"पुत्र! आज मैं तुम्हारे मुंहसे अनोखी

बात सुन रहा हूं जिसे सुनकर मेरे हृदयमें अन्यन्त दुःख हो रहा है। क्या तुम्हें ऐसा करना उचित है ?" वज्रकुमारने भर्राई हुई आवाजमें कहा,—"पिताजी, आपने सच्चे पिताका कर्त्तव्य पालन किया है। मुझे पाल-पोसकर इतना बड़ा बनाया किन्तु मेरे हृदयमें अपने माता-पिताके सम्बन्धमें जाननेके लिये प्रबल उत्कण्ठा हो रही है, अतः आप सच्ची बात कहकर मेरे अशान्त हृदयकी हलचलको शान्त करेंगे। पिताजी, मैं सादर आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप मुझसे सच्ची बात कहें; जिसे जाननेके लिये मेरा हृदय व्याकुल हो रहा है। अतः क्या मैं आशा करूं कि आप मुझसे कुछ भी नहीं छिपायें; वल्कि सभी सच्ची बातें कहकर मेरे मनको शान्त करेंगे। सच है, जब एक बार किसी महान् पुरुषके हृदयमें किसी बातकी आशंका हो जाती है तब वे उसे दूर के कर ही दम लेते हैं, वे इस तरह नहीं छोड़ देते। अतः वज्रकुमारकी प्रबल उत्कण्ठा देखकर दिवाकर देवको लाचार हो सब बातें कह देनी पड़ी। वज्रकुमार शान्त होकर अपने माता पिताके सम्बन्धमें बातें सुनने लगे। अंत में उनके हृदयमें वैराग्य भाव उत्पन्न हो गया। वे उसी समय, विमानपर चढ़ अपने पूज्य पिता मुनिराजके पास चले गये। उनके साथ दिवाकर देव इत्यादि थे। उन दिनों मुनिराज मथुराके निकट किसी गुफामें योग-साधन कर रहे थे। वज्रकुमारने मुनिराजको नमस्कार कर हाथ जोड़कर कहा,—"मुनिराज, मुझे आज्ञा दीजिये। मैं साधु होकर तपस्या द्वारा आत्म-कल्याणके परम पवित्र मार्गमें अग्रसर होना चाहता हूं।" वज्रकुमारकी वैराग्य भरी बात सुनकर दिवाकर देवने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा,—

पुत्र ! तुम यह क्या कह रहे हो ? अभी तुम्हारी उम्र कितनी है ? मेरे सामने क्या तुम साधु बनोगे ? क्या हो अच्छा हो कि तुम घर जाकर राज्यका शासन संभालो और मुझे तपस्या करनेका सुअवसर दो। तुम सयाने हो चले, अब मैं निश्चिन्त हो रहा हूं, अतः मुझे तपस्या करनेका मौका दो, पुत्र मेरा कहना स्वीकार करो। यद्यपि दिवाकर देवने वज्रकुमारको मुनि-व्रत लेनेसे विमुख करनेके लिये लाख चेष्टा की किन्तु उस सच्चे तपस्वो वैरागीने मुनिराजसे दीक्षा ले ली। वे उसी दिनसे कठिन कष्ट सहते हुए तपस्याके पवित्र मार्गमें अग्रसर होने लगे। जो चन्द्रमाके समान पवित्र जिन शासन रूपी सिन्धुके बढ़ाने वाले सिद्ध हुए। प्रिय पाठकगण ! वज्रकुमारके मुनि होनेकी कथा लिखो गयी, अब आगेका वर्णन लिखा जाता है आशा है कि आप इसे श्रद्धा-भक्तिसे सुनेंगे।

दरिद्रा रानी हुई।

प्रिय पाठक ! उसी समय मथुरा नगरीमें राजा पूतगन्ध राज्य करते थे। उर्विला उनकी रानी थी। वह विदुषी सम्यग्दर्शनसे विभूषित थी, उसका अधिकांश समय जिन भगवानकी पूजामें व्यतीत होता था। रानी जिन धर्ममें इतनी श्रद्धा-भक्ति रखती थी कि वह प्रत्येक अष्टान्हिकाके महोत्सवपर आठ दिनतक बड़ी धूम-धामसे पर्व मनाती तथा दानादि कार्य द्वारा जिन धर्मकी महत्ता स्थापित करती ...न दिनों उक्त नगरीमें एक सेठ था जिसका नाम सागरदत्त था। ...मुद्रदत्ता उसकी पत्नी थी। पूर्व जन्ममें पापके कारण उसके यहां ...क कन्याने जन्म लिया था, जिसका नाम दरिद्रा रखा गया।

दरिद्राका जैसा नाम था ठीक उसीके अनुसार फल मिला। दरिद्रा-के जन्म-कालसे ही सेठके ऊपर विपत्ति आयी। सेठके कुलमें दरिद्राको छोड़कर कोई अन्य नाम लेवा तथा पानी देवा नहीं बचा। सब कुछ स्वाहा हो गया। प्रथम धन-सम्पत्ति गयी इसके बाद कुटुम्बकी बर्बादी। अब दरिद्रताके लिये जीवनका कोई अवलम्ब न रहा, वह लोगोंका जूठा अन्न खाकर जीवन बिताने लगी। सच है, पापके कारण जीव दुःख भोगते हैं। एक समयकी बात है कि मथुरा नगरीमें नन्दन और अभिनन्दन नामक दो मुनिराज भिक्षा लेने आये। उसी समय दरिद्रा जूठा अन्न खा रही थी। उसे देख कर अभिनन्दनने नन्दनसे कहा,—"महामुनि! देखिये, यह लड़की कितनी अभागिनी है जो लोगोंका जूठा अन्न खाकर अपना जीवन धारण करती है, बड़े अफसोसकी बात है कि यह दुःखिनी बाला कष्टमय जीवन बिता रही है। उसी समय नन्दन मुनिने अपने अवधि ज्ञानसे ज्ञातकर कहा,—"आपका यह कहना ठीक है कि इस दुःखिनी बालाका वर्त्तमान समय दुःखसे भरा हुआ है किन्तु इसका उज्वल भविष्य है। यह अपने पुण्यके बलसे मथुरा नगरीके राजा पूतगंधकी पटरानी होगी। उसी समय वहांपर एक बौद्ध भिक्षु जैन मुनियोंकी बातचीत सुन रहा था। वह यद्यपि बौद्ध साधु था, किन्तु जैन महर्षियोंके वचनपर उसकी श्रद्धा अधिक थी। उस ने दरिद्राको अपने स्थानपर ले जाकर उसे सुखसे रखा। अब बालिका दरिद्राने यौवनके विशाल प्राङ्गणमें प्रवेश किया। उसके अङ्ग प्रत्यङ्गसे यौवन फूट कर प्रकाशित होने लगा। उसकी आंखों के सामने मछलियोंकी चंचलता फीकी पड़ गयी। कवि सुन्दरियों

के मुखकी उपमा चन्द्रमासे देते हैं परन्तु दरिद्राके मुख सौन्दर्यके आगे वह भी लज्जित हो रहा। उसके बढ़ते हुए नितम्बके डरसे विचारे स्तनका मुंह काला हो गया। उसकी सुन्दरताका वर्णन किन शब्दोंमें किया जाय। एक दिन नवयौवन दरिद्रा नगरके उपवनमें जाकर पेड़की डालीपर झूला झूल रही थी, दैवयोगसे वहांपर मथुराधीश चले आये, उनकी नजर दरिद्रापर पड़ी। राजा उसकी जवानी पर मंत्र-मुग्ध हो रहे। राजाने दरिद्राका परिचय पूछा। उसने राजाको अपना परिचय तथा रहनेका स्थान बता दिया। राजा उसके सौन्दर्यपर लट्टू हो रहे थे। वे बड़ी कठिनाईसे घर आये। राजा पूतगन्धने श्रीवन्दक (बौद्ध साधु) के पास अपने मन्त्रीको भेजा। मन्त्री महोदय वहां जाकर कहने लगे,—"आपका भाग्य-सराहनीय है तथा आपकी कन्या भाग्यशालिनी है जिसके लिये मथुरा नरेश अपना प्राण दे रहा है। अतः महाराजने आपकी भाग्यवती कन्याको अपनी पटरानी बनाना निश्चय किया है, अतः तुम्हारी क्या राय है ? श्रीविन्दकने कहा,—"मन्त्रिवर ! महाराजका प्रस्ताव मुझे सहर्ष स्वीकार है, किन्तु एक शर्त है जिसकी पूर्ति होनेसे ही इसका विवाह आपके महाराजके साथ हो सकेगा। आपके महाराज यदि बौद्ध धर्ममें दिक्षित हो जाय तभी मैं विवाह कर दूंगा अन्यथा नहीं।" मन्त्री लौट आया, उसने महाराजसे श्रीविन्दककी शर्त कह सुनायी। महाराज तो काममें पागल हो रहे थे उन्होंने शर्त स्वीकार कर ली। सच ही किसीने कहा है:—

'काम विवश मतवाला बनकर, क्या न पाप कर सकते हैं।
कामी धर्म बदलना मानो, मनकी मौज समझते हैं॥

काम-जालमें फँस मानव जो करे कुकर्म न थोड़ा है।
सब कुछ कर गुजरेगा वह तो महापापका फोड़ा है।

पाठकगण ! महाराज पूतगन्धके मनकी मुराद पूरी हुई। दरिद्रा उसकी पटरानी हुई। अब यह दरिद्रा नहीं रही वरन उसका नाम बुद्धदासी हुआ। अव बुद्धदासी पटरानी होकर बौद्धधर्मकी उन्नतिमें सहायता प्रदान करने लगी। यद्यपि जैन धर्मके समान संसारमें कोई उत्कृष्ट धर्म नहीं किन्तु उसे तो वेही पाते हैं जिसके भाग्यमें वदा होता है।

रथ रुका।

उसी समय, अष्टाह्निकाका पवित्र पर्व आ पहुंचा। रानी उर्विलाने अपने पूर्व नियमानुसार, रथ महोत्सवके लिये धूम-धामसे प्रवन्ध कराया। रथ सुन्दर ढङ्गसे सजाया गया, वह निकलने ही वाला था। इतनेमें बुद्धिदासीने महाराजसे कहकर रथ रुकवा दिया कि मेरा रथ पहले निकलेगा इसके बाद उर्विलाका। उस समय महाराजने उचित अनुचितका विचार छोड़ बुद्धिदासीके कथनकी पुष्टि की। सच है:—

मोह-अन्ध जो जन होते हैं वे न देख कुछ सकते हैं।
गौ औ अर्क दूधमें वे हो तनिक भेद नहीं रखते हैं॥

ऐसी दशा राजा पूतगंधकी हुई। अब रानी उर्विलाके हृदयमें जिन भगवानके रथ रुक जानेसे गहरी ठेस लगी। उसने अपने मनमें दृढ़ निश्चय कर लिया कि जवतक जिनेन्द्र भगवानका पहिले रथ नहीं निकलेगा तबतक मैं अन्न-जल नहीं ग्रहण करूंगी। वह उसी समय क्षत्रिया नामक गुफामें जा पहुंची जहां महामुनि सोमदत्त

और वज्रकुमार मुनिराज तपस्या करते थे। उर्विलाने उन्हें नमस्कार कर भरायी हुई आवाजमें कहा,—"जैन धर्म रूपी समुद्रकी उन्नति वढ़ान) करने वाले चन्द्रमाओ ! मिथ्यात्व रूपी अन्धकारको भगानेवाले सूरज ! आज मैं धर्म संकटमें फँसी हुई हूं। भगवन् मेरी उससे रक्षा कीजिये। प्रभो. आज जैन धर्मपर घोर संकट छा गया है उसे दूर करनेका प्रयत्न कीजिये। देव, मैंने प्रतिज्ञा कर ली है कि जबतक मेरा सर्वदाकी तरह इस वार रथ नहीं निकलेगा मैं अन्न जलतक नहीं ग्रहण करूंगी। प्रभो ! बुद्धिदासी महाराजकी प्रिय रानी हो रही है, उसने राजासे कह कर मेरा रथोत्सव रुकवा दिया है, अतः मैं आपकी शरणमें आयी हूं, जैसा चाहें वैसा कीजिये। उसी समय मुनियोंकी वन्दना करनेके लिये दिवाकरदेव तथा अन्य विद्याधर आये। वज्रकुमार मुनिने आगत विद्याधरोंके कहा,—"देखिये, इस समय जैन धमपर महान विपत्ति आई हुई है। बुद्धिदासीने इसका (रानी) रथ रुकवा दिया है अतः आप लोग वहां जाकर जैसे हो जिनेन्द्र भगवानका रथ निकलवाइये। मुनिराजकी आज्ञा सुनकर समस्त विद्याधर उसी समय मथुरा नगरी चले आये।

'जिनके मनमें धर्म भाव है, वे प्रयत्न खुद करते हैं।
मुनिके कहनेपर वे उसमें सदा अग्रसर रहते हैं॥

रथ निकला।

विद्याधर रानी बुद्धिदासीके पास जाकर समझाने लगे,—"देखिये, सदासे उर्विलाका रथ निकलता आया है। उस पुरानी ... को व्यर्थमें तोड़नेसे तुम्हारा क्या लाभ है। अतः रथ निकल जाने दो।" किन्तु मूरख हृदय न चेत जो गुरु मिलहिं

विरश्चि सम, विद्याधरोंने सोचा, ये इस तरह नहीं मानेगो 'विन भय होय न प्रोति' की उक्ति ठोक है। बिना टेढ़ी ऊंगलो किये घी नहीं निकलता। ऐसा विचार कर उन्होंने रानीके सिपाहियोंको मार-पोटकर भगा दिये। इसके बाद उर्विलाका रथ बड़ी धूम-धाम-से निकला।

जैन धर्ममें।

उस समय, जैन धर्मकी खूब महिमा हुई, राजा तथा रानो बुद्धिदासीपर पवित्र जैन धर्मका प्रभाव पड़े विना वाकी नहीं रहा। उनने पवित्र हृदयसे जिन दीक्षा ले ली, इसके बाद अन्य लोग भो दीक्षित हुए। बज्रकुमार मुनिने जिस भक्ति-भावसे जैन धर्मकी मर्यादा स्थापित करनेमें तत्परता दिखलाई अन्य धर्मात्माओंको उचित है कि वे भी संसारकी भलाई करने वाली स्वर्ग मोक्ष प्रदान करने वाली धर्म-प्रभावनाका मार्ग प्रशस्त करें। संसारके उत्तम पुरुष ही मूर्ति-प्रतिष्ठा, पुराने मन्दिरोंका जीर्णोद्धार रथ महोत्सव, विद्यादान, आहार दान, अभय दानादि कार्य द्वारा धर्म मार्गकी उन्नति कर सम्यग्दर्शन प्राप्त कर त्रिभुवन भरमें पूजनीय होते हैं। वे ही अन्तमें मोक्ष धामके वासी होते हैं। अन्तमें मेरी यही मनो-भिलाषा है कि श्री बज्रकुमार मुनिराज, मेरी बुद्धि निर्मल करें जिस से मैं आत्म कल्याण कर मोक्ष धामका अधिवासी बनूं।

श्री मल्लिभूषण आचार्य मूल संघके प्रधान शारदागच्छमें वर्त्त-मान थे। वे ज्ञानके आगार, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्य-क्चरित्रसे विभूषित हैं, मैं उनकी पूजा करता हूं तथा प्रार्थना करता हूं कि वे मुझे मोक्ष कल्याण प्रदान करें।

नागदत्त मुनिकी कथा

(१४)

"पाठक, पढ़ लें नागदत्त मुनि, की प्रिय उत्तम गाथयें।
जिससे आप सहजमें ही जग-भवसे छुटकारा पायें॥
मोक्ष-राजके अधिनायक हैं, पंच परम गुरु कहलाते।
नमस्कार करते हैं हम भी, भक्ति-भाव निज प्रकटाते॥

पाठक, यहांपर जिस समयकी कथा लिखी जाती है उस समय राजगृह मगधराज्यकी राजधानो थी। वहां प्रजापाल राजा राज्य करते थे। प्रजापाल राजामें शासनके जितने आम गुण चाहिये सभी उनमें विद्यमान थे। अर्थात वे न्याय पूर्वक राज्य-शासनका कार्य करते थे। प्रियधर्मा नामक उनकी स्त्री थी। वहभी शील व्रत पालन करने वाली धार्मिक स्वभावकी नारी थी। उसके प्रियधर्म और प्रिय-मित्र नामक दो पुत्र थे। वे भी पिताके समान ही सच्चरित्र तथा बुद्धिमान थे।

प्रतिज्ञा-पालन

कुछ दिनोंके बाद, दोनों भाई वैराग्य धारणकर साधु हो गये। अंतमें दोनों समाधिमें ही प्राण छोड़ अच्युत स्वर्गके देव हुये। वहां जाकर दोनोंने आपसमें इस बातकी प्रतिज्ञा की कि जो कोई पहिले स्वर्ग छोड़ मनुष्य योनिमें जन्म धारण करेगा उस समय स्वर्गमें रहने वाले देवका कर्त्तव्य होगा कि वह उसे सम्बोधित कर, मोक्ष प्रदान करने वाले जैन-धर्ममें दीक्षित करावे।" उनमें प्रियमित्र सबसे पहिले मनुष्य योनिमें उत्पन्न हुआ। वह उज्जयिनीके राजा नागधर्मका

राजा श्रेणिक से रानी चेलनी कहती हैं कि मैंने झोपड़ी जला कर साधुओं का उपकार किया है उसके लिये एक सर्प की कथा सुनाती हूं ।

प्रिय पुत्र हुआ। उसकी माताका नाम नागदत्ता था। नागदत्त सांपके साथ खेला करता था जिससे अन्य लोग आश्चर्य चकित हो जाते थे किन्तु वह सदा सांपके साथ क्रीड़ा करनेमेंआनन्द प्राप्त करता था उधर स्वर्गमें रहने वाले प्रियधर्मने संपेरा वेष धर दो भयंकर सांप लेकर उज्जयिनी नगरीमें जहां तहां सांपोंका खेल दिखाना शुरू किया। वह, सबसे कहता कि मैंने सांपोंके साथ क्रीड़ा करने की अच्छी जानकारी हांसिल की है, अतः इस नगरीमें अगर कोई दूसरा व्यक्ति सांपोंके साथ क्रीड़ा करना जानता हो तो मैं उसे अपनी कला दिखलाऊँ। उसी समय किसीने नागदत्तके पास जाकर संपेरेकी बात कह दी। नागदत्तने उसी समय संपेरेको बुलाया। संपेरा तो ऐसा सुयोग खोज हो रहा था जिसमें अपने मित्रको सम्बोधित करनेका मौका मिले। संपेराके आनेपर नागदत्तने घमण्ड में कहा, "तुम अपने सांप पिटारीसे बाहर निकालो मैं उनसे क्रीड़ा करना चाहता हूं। तथा यह जानना चाहता हूं कि तुम्हारे सांप जहरीले हैं या नहीं।" नागदत्तकी अभिमान भरी बात सुन प्रिय-धर्मने कहा, "भला आप क्या कह रहे हैं ? मैं राजकुमारोंके साथ इस प्रकारकी हंसी नहीं करता जिसमें प्राण जानेका खतरा हो। मान लीजिये कि मैंने आपके सामने अपने सांप आपके खेलनेके लिये छोड़ दिये, उसी बीचमें अगर सांपने आपको काट खाया तब मेरी क्या दशा होगी ? मैं मुफ्तमें मारा जाऊंगा। राजा तो हमारी जान छोड़ेंगे नहीं तब मैं ऐसा काम क्यो करूं जिसमें प्राण जानेका खतरा हो, हां अगर आप कहें तो मैं आपके सामने अपनी कला दिखाऊं।"

सांपने काट खाया

नागदत्तने सपेरेकी बात सुनकर कहा, तुम मेरे पितासे डर रहे हो वे मेरे विषयमें पूर्ण रूपसे जानते हैं कि मै सदा सांपोंसे खेला करता हूं। तुम अभय रहो। अगर तुम्हें विश्वास नहीं होता तो मैं तुम्हें अपने पितासे अभय-दान दिलाता हूं। ऐसा कहकर नागदत्त संपेरेको पिताके पास ले गया। उसने पितासे कहकर उसे (संपेरे) क्षमा दान दिला दिया। नागदत्तको प्रसन्नताका ठिकाना नहीं था उसने संपेरे (प्रियधर्म) से सांप निकालनेके लिये आग्रह किया। संपेरेने पहिले एक साधारण सांप निकालकर बाहर छोड़ दिया। नागदत्त सांपसे खेलने लगा। उसने थोड़े समयमें ही सांपको निस्तेज कर दिया। अब उसकी हिम्मत बढ़ चली थी, उसने अभिमान प्रकट करते हुए कहा, "तुमने एक साधारण निर्बल सांप पिटारीसे निकाल कर मेरी कला निपुणता शक्तिका उपहास किया है। क्या ही अच्छा हो कि इस बार कोई भयङ्कर विषैला सांप निकालकर मेरी शक्तिका परिचय प्राप्त करो।" प्रियधर्म (संपेरे) ने विनम्र शब्दोंमें कहा,—"राजकुमार बस हो चुका आपकी परीक्षाका अंत। आपने सांपको काबूमें कर अपनी कला दिखा दी। अब मुझे दूसरे सांपके विषयमें कुछ भी नहीं चाहिये। मेरे पास एक ऐसा जहरीला सर्पराज है जिसके काटनेसे कोई प्राणी जीवित नहीं रह सकता अतः मैं आपसे कर जोड़ सादर प्रार्थना करूंगा कि मुझे क्षमा करें। पुनः दूसरा सांप निकालनेके लिये आग्रह न करें संयोगसे यदि उसने काट खाया तब मृत्यु निश्चित है।" संपेरा (प्रियधर्म) के लाख कहनेपर भी नागदत्तने अपना दुराग्रह नहीं छोड़ा। उसने क्रोध-पूर्ण

शब्दोंमें कहा—"अरे! डरपोक क्यों बनते हो? तुम्हें क्या पता है कि मैं सांपोंको वश करनेमें कितनी क्षमता रखता हूं, याद रक्खो, तुम्हारा यह साधारण सांप तो नगण्य है। मैंने अब तक हजारों भयङ्कर विषैले सांपोंको अपने वशमें किया है। भला तुम क्यों डरते हो? मानलो, उसने मुझे काट खाया तौ भी तुझे इसकी परवा नहीं है। मेरे पास ऐसी २ जड़ीबूटी की दवाइयां हैं जिनसे भयङ्करसे भयङ्कर सांपका विष सहजमें ही शांत हो सकता हैं। नादान, डरना तो मुझे चाहिये, परन्तु तू डरता है।" प्रियधर्मने कहा, "अच्छा, जब आपका ऐसा ही विचार है तब मै लाचार हूं।" ऐसा कहकर उसने राजा की दुहाई देकर पिटारेसे सांपको निकाल बाहर किया। सांप पिटारेसे निकल फुफकारने लगा। वह इतना ज़हरीला था कि उसकी फुफकारसे ही लोगोंका सिर चक्कर खा जाता था। नागदत्तको अभिमान था कि वह सांपोंका वशमें करनेमें अद्वितीय है। उसने ज्यों ही सांपको पकड़ना चाहा, त्यों ही उस भयङ्कर सांपने नागदत्त को काट खाया। देखते २ नागदत्त बेहोश होकर धराशायी हो गया। सभी हाहाकार करने लगे। राजाके शोकका ठिकाना नहीं था। चारों ओरसे झाड़-फूंक करने वाले तांत्रिक बुलाये, मगर सबके सब असफल रहे। नागदत्तको कोई नहीं जिला सका। तब तांत्रिकोंने कहा,—"महाराज, राजकुमारको सांपने नहीं काटा है, कालने सांपका वेष धर अपना मतलब सिद्ध किया है। महाराज, अब हमारे वशकी बात नहीं कि हम कालके काटे हुयेको सजीव बना दें। महाराजने संपेरेसे कहा,—भाई, तुम भी अपना जौहर दिखलाओ। मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि अगर राजकुमार जीवित हो गये तो मैं अपना

आधा राज्य तुझे दे दूंगा। संपेरे (प्रियधर्म) ने कहा,—"महाराज ! मुझ राज्यकी आवश्यकता नहीं राजकुमारको काल रूपी सांपने काटा है। किन्तु, यदि आप विश्वास दें कि अगर राजकुमार जीवित हो जांयगे तो आप उन्हें मुनिव्रत स्वीकृत कर लेनेकी आज्ञा देंगे तब मैं उद्योग करूं, अगर लग जाय तो अच्छी वात हो।"

महाराजने संपेरेकी वात स्वीकृत कर ली।

नागदत्त मुनि हुए।

प्रियधर्मने मन्त्र पढ़ कर उसे जीवित कर दिया। राजकुमार उठ बैठे। सब लोग आनन्द मनाने लगे। सच है—

"मिथ्या रूपी विषको पीकर जो अचेत वन जाते हैं।
उपकारी मुनि निज स्वरूपका सच्चा ज्ञान कराते हैं॥

महाराजने नागदत्तसे अपनी प्रतिज्ञाकी वात कही। नागदत्त अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने एक क्षण विना विलम्ब किये यमधर महामुनिके पास जाकर दीक्षा ग्रहण कर ली। उसी समय सपेरेने (प्रिय धर्म) नागदत्त मुनिसे अपना समूचा वृतान्त कह नमस्कार कर स्वर्ग लोकको प्रस्थान किया। नागदत्त मुनि अपनी कठिन तपस्या द्वारा अपने निर्मल चरित्रको प्रकटाते हुए कल्पी मुनि हो गये।

चोरके चंगुलमें।

एक दिन वे तीर्थ यात्रा करने निकल पड़े। मार्गमें जाते हुए उन्हें एक भयानक जङ्गल मिला। उस जंगलमें चोर डाकुओंका प्रधान अड्डा था। डाकुओंने मुनिराजको देखकर अपने मनमें विचार किया कि ये हम लोगोंका पता बता देंगे जिससे हमारी चोरी की

कार्यवाही बन्द हो जायगी और हम दण्डित होंगे, इस भयसे डाकू मुनिराजको पकड़ कर सूरदत्त नामक सरदारके पास ले गये।

रिहाई हुई।

सरदारने मुनिराजको देखते ही अपने साथियोंसे डपट कर कहा,—"इन्हें क्यों पकड़ लाये। ये तपस्वी मुनि हैं। संसारका हित-साधन करते हैं। इनसे किसीका अपकार नहीं होगा, नहीं देखते ये कितने सीधे-सादे मुनि हैं। इन्हें जल्दी मुक्त करो; तुम लोगोंने मुनिको दुःख देकर बड़ाभारी अपराध किया।" सरदार की बात सुन डाकुओंने मुनिराजको उसी क्षण बन्धन मुक्त कर दिया।

डाकू सरदार मुनि हुआ।

मुनिराज डाकुओंके हाथसे छूट कर ज्योंही आगे बढ़े। उसी राहसे उनकी माता नागदत्ता अपनी कन्याको लिये परिवारवालोंके साथ कौशाम्बी नगरीमें जा रही थी। नागदत्ताका विचार था कि अपनी कन्याका विवाह उक्त नगरीके सेठ जिनदत्तके पुत्र धनपालसे कर उसे दहेजमें प्रचुर धन दूं। नागदत्ताने अपने पुत्र नागदत्तको प्रसन्न होकर नमस्कार किया तथा मुनिराजसे पूछा,—"मुनिराज आगेका मार्ग निष्कंटक तो है न?" मुनिराज बिना कुछ उत्तर दिये आगे बढ़ते गये। सच है:—

"सच्चे मुनिका धर्म यही है जो निष्पक्ष भाव रहते।
शत्रु-मित्र को एक दृष्टिसे, सतत काल देखा करते॥"

नागदत्ता आगे चलती गई। इतनेमें डाकुओंने हमला कर उसकी सारी सम्पत्ति लूट ली। डाकुओंने नागदत्ता की कन्याको

अपने कब्जेमें कर लिया। उसी समय डाकू सरदार सूरदत्तने कहा,—"भाइयो! तुमने देखा मुनिराजका निष्पक्ष भाव। उनके लिये सभी बराबर, चाहे साधू हो या डाकू। इस स्त्रीने उन्हें प्रणाम किया, मगर उन्होंने कुछ भी नहीं कहा। जब हम लोगोंने इसे बांध कर इसका सारा सामान लूट लिया तो भी वे निश्पक्ष रहे, चूं तक नहीं बोले,

"मुनिकी उच्च वृत्ति है ऐसी जो सम दृष्टि सदा रहती।
शत्रु-मित्र से एक भावमें एक भावना ही रहती ॥
दिक् अम्बर मुनि शान्त, धीर, गंभीर सदासे होते हैं।
तत्व दर्शियोंमें वे अपना ऊंचा आसन रखते हैं ॥
देखा तुम लोगोंने मुनिको, समदर्शीके बाने हैं।
शांत, तत्व दर्शी कैसे हैं, महा धीर मरदाने हैं ॥

अन्तिम परिणाम

नागदत्ता डाकू-सरदारके मुखसे अपने पुत्रकी प्रशंसा सुनकर बड़ी क्रोधित हुई। वह क्रोधसे कांपने लगी। वह कहने लगी, "देखो, मेरा पुत्र होकर मुझे सचेत नहीं किया, नहीं तो मेरी ऐसी दुर्दशा क्यों होती? उसने सरदारसे कहा,—"मुझे एक छुरी दो, मैं उसी पापीकी मां हूं जिसने अपनी मातासे धोखा-धड़ी की है। मैं जीकर क्या करूंगी, नव महीने तक उसे अपने उदरमें रखकर जैसी दुर्दशा भोगी है इससे अच्छा है कि अपना प्राणान्त कर उसकी मांका अस्तित्व ही मिटा दूं जिसने निर्दयताका व्यवहार किया है। जिसने मेरे पूछनेपर भी उत्तर नहीं दिया, जिसने मुझे-अपनी मांको-उससे जिसने नव महीने तक जिसे उदरमें रक्खा-रास्तेका खतरा नहीं

बताया, मैं ऐसे नालायक पुत्रकी माता कहना उचित नहीं समझती; भाई, जल्दी छुरी दो, मैं अपना खातमा कर दूं।" डाकू सरदारने नागदत्तकी बात सुनकर गद् गद् होकर कहा,—मां! तुम मेरी भी माता हो जिसने ऐसे उन्नतमन्त मुनिराजको उत्पन्न करनेका सौभाग्य प्राप्त किया है। माता, तुम केवल उक्त मुनिकी ही माता नहीं हो बरन् मेरी भी माता हो, मेरे अपराधको क्षमा करो, हे क्षमा मूर्ति मां!" ऐसा कहकर सरदारने नागदत्ताके लूटे हुये धनको वापस कर दिया, उसके बाद वह, महामुनि नागदत्तके पास चला गया। मुनिराजकी स्तुति कर उसने दीक्षा ले ली। सूरदत्त मुनिने अपने कठिन तपसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रको प्राप्त कर अपने घतिया कर्म नष्ट कर दिये। केवल ज्ञान प्राप्त करनेके बाद वे संसारी जीवोंका कल्याण करने लगे। अन्तमें अपने अघातिया कर्मका नाश कर मोक्ष-धामके वासी हुये। अन्तमें मेरी (लेखक) यही प्रार्थना है कि दोनों मुनि मुझे शांति प्रदान करें। यही हार्दिक कामना है।

शिवभूति पुरोहित की कथा

(१९)

"जग हित करने वाले जिन प्रभु, जगमें शीश झुकाता हूं।
दुर्जन संगति कष्ट-कथा मैं, पाठकगण! लिख जाता हूं॥

किसी समय कौशाम्बी नगरीमें, राजा धनपाल राज्य करते थे। वे बुद्धिमान थे तथा प्रजा-वर्गके ऊपर न्यायतः शासन किया

करते थे। इनके नामसे शत्रु तक कांपते थे। राजाके यहां, पुराणोंका ज्ञाता शिवभूति पुरोहित रहता था। उसकी नगरीमें कल्पपाल और पूर्णचन्द्र नामक शूद्र रहते थे। एक दिनकी बात है कि पूर्णचन्द्रने अपनी लड़कीके विवाहमें पुरोहित महाराजको अपने यहां भोजन करनेके लिये निमन्त्रण दिया। पहिले, शिवभूतिने शूद्रके यहां भोजन करनेमें अपनी असमर्थता बतलाई, किन्तु, कल्पपालने हाथ जोड़कर कहा,—"महाराज! मै आपके भोजनके लिये ब्राह्मणके हाथों रसोई बनवानेका प्रबन्ध करूंगा, तब तो हर्ज नहीं है।" आखिर ब्राह्मण देवता, बढ़िया बढ़िया माल खानेका लोभ नहीं छोड़ सके। वे भूल गये कि भोजन ब्राह्मण बनाता है किन्तु भोजनकी सामग्री तो शूद्रके पैसेसे ही आती है। बस निमन्त्रणके नियत समय पर ब्राह्मण शिवभूतिने उक्त शूद्रके यहां डटकर भोजन किया, तर माल खाकर ब्राह्मण अफर गया। मालूम होता था कि उसे भर पेट कभी ऐसा भोजन नहीं मिला था। किन्तु, दैवयोगसे किसीने शिवभूतिको वहां भोजन करते देख लिया, उसने इसकी खबर राजा को दे दी। बस, महाराजने शूद्रके यहां भोजन करने वर्ण-व्यवस्था तोड़ने वाले शिवभूतिको अपने राज्यसे निकाल बाहर किया, पाठक लोभमें पड़कर, उस ब्राह्मणकी कैसी दशा हुई। अतः बुरी संगति छोड़कर अच्छे लोगोंका साथ करना चाहिये जिसमें धर्म, कुल और मर्यादाका भंग न हो। किसीने कहा है:—

'संगति कीजै साधुकी, बनत बनत बनि जाय।
दुर्जनकी संगति तजो, कुल मर्याद नशाय॥'

पवित्र हृदय वाले बालककी कथा।

(१६)

'बालक जैसा देखेगा वह वैसा ही प्रकटायेगा।
भेद-भाव, छल कपट न कोई रंचमात्र न लायेगा॥
बालकका मन स्वच्छ भावसे पूर्ण रूपही रहता है।
ऐसो बालककी गाथाको थोड़ेमें बतलाता है॥

गहनेके कारण जान गयी।

कौशाम्बी नगरीमें राजा जयपाल राज्य करते थे। उसी नगरीमें समुद्रदत्त सेठ रहता था। उसकी स्त्रीका नाम समुद्रदत्ता था। उसके पुत्रका नाम सागरदत्त था। वह अत्यन्त सुन्दर बालक था। जो कोई उसे देखता उसकी सुन्दरतापर मुग्ध हो जाता। उसे सभी खिलानेके लिये व्यग्र हो जाते। सेठ समुद्रदत्तके बगलमें ही गरीब गोपायन रहता था। सच है दरिद्र होना पूर्व जन्मका महान पाप है जिससे मनुष्य दरिद्रताका दुःख सहता है गोपायनके लड़केका नाम था सोमक। गरीब मां बाप अपने नन्हें लड़केको प्यार करते थे, मगर गोपायनके दिलमें धन-प्राप्त करनेकी इच्छा सदा बलवती रहती थी। आह! गरीबी तेरा सत्यानाश हो। तेरे जालमें फँसकर मनुष्य क्या २ दुष्कर्म नहीं कर डालते हैं। अतः वह येन केन प्रकारेण धन पानेका प्रयत्न करने लगा। दैवयोगसे उसे संयोग मिल गया। सागरदत्त और सोमक एक साथ खेला करते थे। धनी या गरीबके छोटे२ बच्चोंमें छल-कपट नहीं रहता। एक दिन सेठका लड़का

सागरदत्त गोपायनके घर जाकर उसके लड़केके साथ खेलने लगा, जैसा लड़के अक्सर किया करते हैं।

प्राण लिया।

उसी समय गोपायन वहाँ चला आया। उसने बालक सागरदत्त के शरीरमें, सोनेके गहने देखकर लोभ आ गया बस, क्या था। शैतान शिरपर सवार हो गया। उस दुष्ट लोभी-पापीने बालकको घरके अन्दर बन्द कर बेरहमी और बेदर्दीसे उसका गला घोंट दिया। किन्तु उसका खुद लड़का पिताका पाप देख रहा था, गोपायनने बालकके गहने लेकर उसे घरमें गाड़ दिया।

हाय मार कर रह गये।

एक दिन बीता, दो दिन चले गये मगर सागरदत्तका कहीं पता नहीं लगा। तब सेठ समुद्रदत्त समझ गया कि गहनेके लोभके कारण उसके लड़केको जान चली गयी। दोनों दम्पति हाय मार-कर रह गये वे कर क्या सकते थे? उनके हृदयमें शोककी अपार वेदना हुई, उसे शब्दों द्वारा वर्णन करना असम्भव है, अनुभवकी चीज है, उसे वही जानेगा जिसका लड़का संसारसे चल बसा हो!! दुखियोंका दुःख दुखिया ही जानते हैं।

पापका भण्डाफोड़।

एक दिन संयोगसे सोमक सेठके घर खेल रहा था, उस दिन समुद्रदत्ताने स्वभाववश उससे पूछा,—"बच्चा, तुम अकेले खेलते हो, तुम्हारा साथी कहांपर है? सोमकका हृदय पवित्र था। वह पापी

संसारका घात-प्रतिघात क्या समझे ? उसने तुरन्त कह दिया कि मेरा साथी मेरे घरमें गड़ा है। समुद्रदत्ता अपने प्रिय पुत्रकी दुर्दशा की बात सुनकर धड़ामसे जमीनपर गिर पड़ी। उसी समय सेठ घर पहुंच गया, वह उपचार कर स्त्रीको होशमें लाया। इसके बाद सेठानीने सोमक द्वारा कही हुई सारी बातें समुद्रदत्तसे कह सुनायीं। समुद्रदत्तने राजाके कोतवालसे अपने लड़केकी हत्या की खबर दी। बस,बातको बातमें पुलिसने धावा बोल दिया, गोपायनके घरमें एक गड़हेके अन्दर मृत बालक समुद्रदत्तकी छत-बिछत लाश बरामद हो गयी गोपायन गिरफ्तार हुआ उसके ऊपर खूनका मामला चला, उसमें उसे फांसीकी सजा मिली। ऐसे पापियोंको ऐसी ही सजा मिलती है, किसीने ठीक ही कहा है:—

"पाप कर्म कर उसे न कोई सदा छिपाये रख सकता।
निश्चय जानो इक दिन उसका भण्डाफोड़ कभी होता॥
जो जैसा करते हैं वैसा अन्त समय फल पाते हैं।
सज्जन पाप कर्मको जगमें निश्चय तज कर जाते हैं॥"

अतः दुःख देने वाले हत्या, चोरी, झूठ, कुचाल कर्म छोड़कर सुख देने वाले दया रूपी जैन-धर्मकी सेवा करनी चाहिये। सच है, बाल्य अवस्था निर्दोप तथा अज्ञानकी अवस्था है, उस समय मनुष्य अबोध रहता है। फिर जवानी आती है, उसमें पड़कर मनुष्य अन्धा हो जाता है। काम-वासना इत्यादि संसारी पाप कर्ममें लिप्त हो जाता है। वृद्धावस्थामें समस्त इन्द्रियां बेकार हो जाती हैं, बीच में संसारके झमेलेमें ही जीवन कट जाता है, आत्म-हितकी बात-तक सोचनेको फुर्सत नहीं रहती। अतः मनुष्य जैसे आता है उसी

रूपमें चल देता है। वह आत्म-कल्याण कर नहीं पाता। किसीने ठीक कहा है:—

"दुर्लभ तनको पाकर जगमें व्यर्थ गँवाना ना चहिये।
धर्म-मार्गमें चलकर अपना हित-साधन करना चहिये॥
मानव तन अनमोल रत्न है उसे काम लाना चहिये।
अपने हितके धर्म-मार्गमें तत्पर ही रहना चहिये॥

राजा धनदत्तकी कथा।

(१७)

"जैसे सूरजके प्रकाशको उल्लू रोक न सकते हैं।
वैसे पापी जैन-धर्मको हानि न कुछ कर सकते हैं॥
हैं अनन्त ज्ञानके स्वामी जिन्हें जिनेश्वर कहते हैं।
नमस्कारकर महाराज धनदत्त-कथा हम लिखते हैं॥

आन्ध्र देशके अन्दर कनकपुर नगरमें राजा धनदत्त शासन करते थे। वे सम्यकत्वधारी गुणज्ञ धर्मात्मा राजा थे। राजा जैन धर्मका सच्चा अनुयायी था, किन्तु उसका मन्त्री बौद्धमतका मानने वाला था। उसका नाम श्री बन्दक था, महाराज अपने बौद्ध मन्त्रीके सहयोगसे शासन कार्य निर्विघ्नतापूर्वक करते थे, मन्त्री इनके शासन संचालनमें किसी प्रकारका बाधक नहीं बनता था। एक दिनकी बात है कि राजा धनदत्त अपने मन्त्रीके साथ कोठेपर बैठकर राज्यके सम्बन्धमें परामर्श कर रहे थे। इतनेमें आकाश मार्ग-

से दो चारण मुनि जाते हुए दिखलाई दिये। महाराजने उसी समय उन्हें नमस्कार कर अपने यहां उनका आवाहन किया। ठीक है:—

जो सज्जन होते हैं वे संगतिका लाभ उठाते हैं।
साधु-संतके दर्शनसे वे सहज प्रेम नित पाते हैं॥

मन्त्रीका श्रावक होना

महाराजकी प्रार्थनापर उक्त मुनियोंने धर्मोपदेश दिये। मुनियों के उपदेशके प्रभावसे प्रभावित होकर श्री विन्दकने श्रावक व्रत ले लिये। ऋद्धधारी मुनि अपने स्थानको चले गये, बौद्ध गुरुने मन्त्री को अपने यहां आते न देख उसे बुलाया। मन्त्री बौद्ध गुरुके पास जाकर बैठ रहा, बौद्ध गुरुको मन्त्रीने नमस्कार नहीं किया। बौद्ध गुरुके आश्चर्यकी सीमा नहीं थी, उसने मन्त्रीसे नमस्कार नहीं करनेका कारण पूछा। श्रीवन्दकने अपने विषयमें जैन धर्ममें श्रावक व्रत लेनेकी बात कही तथा चारण मुनियोंके चमत्कार कह सुनाये। बौद्ध गुरु मन ही मन जलने लगा, उसने मन्त्रीसे कहा,—तुम ठगाये गये हो। भला तुम ही ख्याल करो कि आकाशमें कोई कैसे चल सकता है? अतः जैनी राजाने छल-कपटका जाल बिछाकर तुम्हें जैन धर्ममें मिलाया है। तुम निश्चय जानो, जैनी बौद्ध मत वालोंसे द्वेष रखते हैं, वे सदा बौद्ध धर्मकी हानि किया करते हैं। अतः तुम राजासे नहीं कहना, नहीं तो क्या २ अनर्थ होगा? श्रीवन्दक कमजोर हृदयका अस्थिर बुद्धिका आदमी था। वह सिद्धान्तहीन बेपेंदीके लोटेके समान था जो इशारा पाते ही जहाँ तहाँ ढुलक पड़ता है। किन्तुः—

जो पापी होते हैं सबको पाप-पंथ सिखलाते हैं।
अपने बुरे कर्मसे पापी वाज़ कभी न आते हैं॥
पाठक समझें अग्नि स्वयं जलती है और जलाती है।
स्वयं गरम है और दूसरोंमें गरमी पहुंचाती है॥

पापी मन्त्रीकी आंखे फूटीं।

वस बौद्ध गुरुके बहकावेमें आकर मन्त्रीका विचार बदल गया उसने श्रावक व्रत छोड़ दिया। दूसरे दिन राजाने भरे दरवारमें जैन धर्मकी महानता और चारण मुनियोंके चमत्कार कह सुनाये। सभी आश्चर्य प्रकट करने लगे। तब राजाने अपने कथनको सिद्ध करनेके लिये मन्त्रीकी तरफ अपनी नजर दौड़ाई। किन्तु वह तो दरबारसे ही गायब हो रहा था। राजाने मन्त्रीको बुलाकर उस दिनका दृश्य कहनेके लिये अनुरोध किया। दुष्ट मन्त्रीने कहना शुरू किया,—"महाराज! असम्भव है, न मैंने अपनी आंखों से देखा है और न इस प्रकारकी बात सम्भव हो सकती है।" महाराज अचम्भे में पड़ गये, किन्तु उसी समय झूठे मन्त्रीकी दोनों आखें फूट गयीं। सभी समझ गये कि राजाका कहना सत्य है, मन्त्री एकदम झूठा है, 'जैसी करनी वैसी भरनी' के अनुसार इस-ने फल पाया।

"जो पथमें कांटे बोते हैं, उनके हित खाई रहती।
बुरे कर्मकी अन्तिम हालत कभी नहीं अच्छी होती॥
जो सज्जन हों जिन-शासनमें अपना ध्यान लगावेंगे।
मोक्ष-धाम पाकर वे जगमें मनवाँछित फल पावेंगे॥

पाठको ! आपको भी उचित है कि आप अपनी निर्मल बुद्धि द्वारा जिन भगवान्‌के चरणोंको भक्ति-भावसे पूजाका पवित्र मोक्ष सुख देने वाले जिन भगवानके भक्त बनेंगे।

ब्रह्मदत्तकी कथा।

(१८)

"जिससे शिक्षा लेकर सज्जन भक्तिभाव हैं प्रकटाते।
सच्चे प्रभु अरहन्त देव हैं परिग्रह को नहिं फटकाते॥
नमस्कार कर उन भगवनको भक्ति-भाव अपनाता हूं।
पाठक पढ़ लें ब्रह्मदत्तकी कथा यहां लिख जाता हूं॥

इसी देशके कापिल्य नगरमें राजा ब्रह्मरथ राज्य करता था। उसकी रानीका नाम रामिली था। रानी बड़ी विदुषी थी, राजा उसे प्यार करते थे। उसी रानीके पुत्रका नाम चक्रवर्त्ती ब्रह्मदत्त था वे समस्त भूमण्डलपर एकाधिपत्य राज्य शासन करते थे।

रसोइयाका प्राणान्त।

महाराजके रसोइयेका नाम विजय सेन था। एक दिन उक्त रसोइयेने महाराजकी थालीमें इतनी गरम खीर परोसी जिसे खाने में महाराज असमर्थ रहे। बस, महाराजने विना सोचे-विचारे गरमागरम खीर परोसी हुई थाली उठाकर विजयसेनके सिरपर दे मारी। सिर जलनेसे रसोइयेका प्राणान्त हो गया। हाय:—

'धिक्कार है उस क्रोधको, अन्धा बना देता जहां।
परिणाममें प्राणान्त होता, क्या अनर्थ होता वहाँ॥
हित-अहितका ख्याल तजकर क्रोध करते हैं जहां।
जिससे कुगतिमें भोगते हैं जान लो वे दुख महा॥

भीषण बदला।

रसोइया तो जल जानेके कारण मर ही गया किन्तु वह मरने के बाद खारे समुद्रके अन्दर विशाल रत्नद्वीपमें जाकर व्यन्तर देव हुआ उसने अपने विभंगावधिज्ञानसे पूर्व जन्मकी बातें ज्ञात कर लीं। उसका हृदय प्रतिशोधकी धधकती अग्निसे जलने लगा। उसने अपने प्राण-घातक महाराज ब्रह्मदत्तसे बदला लेनेका निश्चय किया। इस प्रकार अपने मनमें विचारकर उसने सन्यासीका वेष धर आम, नारंगी, केला तथा अन्य फल लेकर महाराजको भेंट किया। महाराज, कपटी सन्यासी द्वारा दिये हुए फल खाकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। पुनः फल खानेके लोभमें महाराजने सन्यासी (व्यंतर देव) से विनम्र शब्दोंमें कहा,—"साधुवर ! आपने दुर्लभ फल देकर मुझे कृतार्थ किया, किन्तु प्रभो, ऐसे २ उत्तम फल आपने कहां प्राप्त किये हैं जिसे खानेसे मन प्रसन्न हा जाता है। मैंने आज तक ऐसे फल नहीं देखे और न खाये थे। प्रभो ! ये फल कहां होते हैं।" कपटी सन्यासी तो चाहता था कि अपने शत्रुसे किसी तरह बदला लें। कहा,—"महाराज, मैं जिस टापूमें रहता हूं वहांके एक सुन्दर बगीचेमें ऐसे उत्तम दुर्लभ फल बहुतायतसे फले हुए हैं। यदि आप चाहें तो वहां चलकर अपनी आँखों देख सकते हैं।"

राजा श्रेणिक ने मुनिराज पर प्रथम शिकारी कुत्ते छोड़े, पीछे उन्हें शांत देख स्वयं वाण छोड़ रहा है।

महाराज उसकी कपटपूर्ण बातोंमें फंस गये। बस वे बिना सोचे समझे अज्ञात सन्यासीके साथ चल दिये। ठीक ही कहा है:—

"जो जिह्वाके लोभी होते, सहसा फंस पछताते हैं।
बुरी यातना सहते हैं अरु अपना प्राण गँवाते हैं।

प्राण कैसे गया

व्यन्तरदेव (कपटी सन्यासी) केसाथ जब महाराज समुद्रके बीचों-बीचमें पहुंच गये तब उसने महाराजको मारनेके विचारसे कष्ट देना शुरू किया। महाराज उसी समय पंच नमस्कार मन्त्रको आराधना करने लगे, तब, उस देवकी सारी शक्ति नष्ट हो गयी। उसने अपना असली रूप प्रकट कर कहा,—"दुष्ट, क्या भूल गया, मैं वही रसोइया हूं जिसे तुमने जलाकर मार डाला था। आज मेरे हृदयमें प्रतिहिंसाकी अग्नि प्रज्वलित हो उठी है, मैं तुम्हें अपने पूर्व जन्मका बदला लेनेके विचारसे यहां लाया हूं, अब निश्चय जानो मैं तेरी जान लेकर अपना प्रति-शोध ऋण चुकाऊंगा जिसमें तू फिर किसीके साथ उस तरहका व्यवहार नहीं करेगा। हां, एक कार्य करनेसे तेरी रक्षा हो सकती है। यदि तू कहदे कि जैन-धर्म कोई धर्म नहीं है और जलमें पंच नमस्कार मन्त्र लिखकर अपने पैरसे मिटा दे तो तुम्हारी जान बच जायगी। महाराजने उस व्यन्तर के बहकावेमें आकर उसी प्रकार कर दिया जैसा उसने कहा था। उस व्यन्तर देवने उसी समय महाराजको मारकर समुद्रमें डाल दिया। उसने प्राण लेकर अपना बदला चुकाया। चक्रवर्तीके मनमें मिथ्या-त्वके भाव आनेके कारण वह सातवें नरकमें गया।

"निश्चय समझो जैन-धर्मपर, जो विश्वास नहीं करते ।
इस असार संसार दुःखमय, में वे सुख नहिं पा सकते ॥
मिथ्या-भाव हृदयमें रखकर, पाप-कर्म कर जाते हैं ।
ब्रह्मदत्त सम नृपति शिरोमणि, घोर नर्क दुख पाते हैं ॥
जो निज हित करने वाले हों, मिथ्या-भाव छोड़ जावें ।
तौ सम्यक्त्व भावको भजकर, स्वर्ग-मोक्ष पदको पावें ॥

प्रिय पाठक ! संसारके सबसे महान् देव अरहन्त भगवान हैं। वे संसारके दोंड, परिग्रहसे परे रहकर इन्द्र, देव तथा चक्रवर्तियोंसे पूजित हैं, जो संसारी जीवोंको भव-सागरसे पार उतारनेके लिये जलयानके समान हैं। ऐसे परम हितकारी भगवान अर्हन्त देवके पवित्र चरणोंमें ध्यान रखनेसे जीवोंके कल्याणका मार्ग प्रशस्त होगा।

महाराज श्रेणिकको कथा

(१६)

केवल ज्ञान दृष्टिसे जो प्रभु जिन जगको देखा करते ।
जगत्पूज्य श्री जिन चरणोंमें, सादर नमस्कार करते ॥
जिनकी सच्ची पूजासे जन, पतित मोक्ष तक पाते हैं ।
शुभ चरित्र श्रेणिकका लिखकर; जगका हित कर जाते हैं ॥

पाठक ! यहां उन दिनोंकी कथा लिखी जाती है जब मगधाधिपति महराज श्रेणिक थे। वे सकल विद्याओंमें पण्डित थे। वे राजनीति-शास्त्रके धुरन्धर आचार्य थे। उनकी महारानी चेलनी

धर्मकी मूर्ति थी। वह जैन-धर्ममें अत्यन्त श्रद्धा रखती थी। एक दिनकी बात है कि महाराज श्रेणिकने अपनी रानीसे बौद्ध-धर्मकी प्रशंसा करते हुये कहा, "प्रिये! इस संसारमें बौद्ध-धर्म ही सुख दाता है उसके समान कोई अन्य धर्म श्रेष्ठ नहीं है, अतः तुम बौद्ध मत स्वीकार कर लो।" पाठकगण, रानी चेलनी तो जैन-धर्मके रंगमें रंगी हुई थी, भला वह अन्य धर्म क्यों स्वीकार करती, उसने विनीत शब्दोंमें कहा, "महाराज, मैं आपके कथनानुसार बौद्ध धर्म अनुयायियोंकी परीक्षा करूंगी तब निश्चय करूंगी कि मुझे क्या करना चाहिये"?

बौद्ध साधुओंकी पोल खुली

एक दिन महारानीने बौद्ध साधुओंको अपने यहां निमन्त्रण किया। बौद्ध साधु बड़ी धूम-धामसे आये। वे ध्यान लगाकर परमात्माकी पूजा करनेका ढोंग रचने लगे। उन्हें इस प्रकार बक-ध्यान लगाये देख, महारानीने उनसे पूछा,—"साधुवर, आप लोग यह क्या कर रहे हैं।" उन्होंने उत्तर दिया,—"महारानी, हम लोगोंकी पवित्र आत्मा इस अपवित्र शरीरको छोड़कर स्वयं बुद्ध भगवानके रूपमें लीन हो रही है।" साधुओंकी कपट पूर्ण बात सुन कर, रानी चेलनीने मण्डपमें जहां साधु लोग ढोंग करके बैठे थे आग लगवा दी। आग लगते ही समस्त कपटी साधु अपनी जान लेकर भाग चले।

महाराजका क्रोध।

उपरोक्त समस्त बृत्तान्त सुनकर महाराज श्रेणिकने क्रोधमें

आग बबूला होकर रानीसे कहा,—"तुमने क्या अनर्थ किया। निर्दोष साधुओंकी जान लेनेपर क्यों तुल गयीं? यदि उनके ऊपर तुम्हारी श्रद्धा नहीं थी तो उसने तुम्हारी क्या हानि की थी जिससे तुमने आग लगाकर प्राण लेनेका निष्ठुर प्रयास किया। रानी चेलनीने विनीत शब्दोंमें कहा,—"नाथ! मैंने जान-बूझकर साधुओंके साथ अन्याय नहीं किया, बल्कि उनके साथ परोपकार किया है। कारण, वे ध्यान लगाकर शाक्षात बुद्ध बन रहे थे। उनका अपवित्र शरीर पृथ्वीपर था। मैंने विवेक-बुद्धिसे विचार किया कि जब ये समस्त साधु अपने अपवित्र शरीर छोड़ बुद्धके शाक्षात आकार बने हुए हैं तब क्या ही अच्छा हो कि ये सर्वदाके लिये विष्णु क्यों न बने रहें? अपने इस अपवित्र देहका सम्बन्ध छोड़ दें इसी विचारसे मैंने आग लगाई थी। महाराज, आप ही निर्णय करें कि मैंने न्याय किया है या अन्याय। सच पूछिये तो मैंने परोपकारके विचारसे उपरोक्त कार्य किया है। यदि आपको विश्वास न हो तो मैं आपको इस विषयपर एक कथा सुनाती हूं वह ऐसी है:—

महाराज! मैं जिस समयकी कथा कह रही हूं उस समय कौशाम्बी वत्स देशकी राजधानी थी। वहांके राजा प्रजापाल थे। वे न्याय-नीतिसे प्रजाके ऊपर सुशासन करते थे। उनका जैसा नाम था वैसे ही उनमें गुण थे। उसी नगरीमें राजा सागरदत्त और समुद्रदत्त नामक दो सेठ रहते थे। एक दिन दोनों सेठने आपसमें शर्त की कि दोनोंके अगर पुत्र और कन्या हुई तो दोनोंका आपसमें विवाह कर प्रीति बनाये रहेंगे। इस प्रकार निश्चय करनेपर सागरदत्तके एक पुत्र हुआ जिसका नाम वसुमित्र रखा गया। किन्तु,

इसमें यही विशेषता थी कि वह दिनमें नागनाथ बन जाता और रात्रिमें सुन्दर जवान। उधर समुद्रदत्तके यहां एक कन्या हुई, उसने अपनी कन्याका नाम नागदत्ता रखा। वह अत्यन्त सुन्दर कन्या थी। समुद्रदत्तने अपनी की हुई प्रतिज्ञाके अनुसार वसुमित्रके पुत्रसे विवाह कर अपने बचनकी पूर्त्ति की। किसीने ठीक कहा है:—

"सच्चे जन हैं वही बचन हित कष्ट अनेकों सहते हैं।
पर अपने बचनोंको हरदम पूर्ण सत्य ही करते हैं।
मरते दमतक कठिन प्रतिज्ञाका पालन कर जाते हैं।
अरे! प्रतिज्ञा पालनमें वे कभी न पैर हटाते हैं॥

बसुमित्रका विवाह हो गया। वह दिनमें पिटारीमें बन्द रहता और रात्रिमें दिव्य पुरुष होकर नागदत्ताके साथ विषय-वासनामें लिप्त रहता। इस प्रकार दोनोंका जीवन व्यतीत होता। पाठक! संसारको विचित्र लीला है। नागदत्ताकी माता अपनी कन्याकी दुरवस्थापर विचारकर दुःखी होती, वह सोचने लगी कि हाय! मेरी सुन्दरी कन्या, सांपसे व्याह दी गयी, मेरी कन्याका भाग्य फूट गया। नागदत्ता अपनी माताकी बात सुन रही थी, उसने कहा, माता, तू व्यर्थमें क्यों चिन्तित हो रही है, मेरे भाग्यमें जैसा बदा है वह होकर रहेगा, इसमें किसीका दोष नहीं है। किन्तु मुझे विश्वास है कि यदि प्रयत्न किया जाय तो मेरे पतिकी वर्त्तमान हालतमें परिवर्तन हो सकता है। इस प्रकार कहकर नागदत्ताने अपनी मातासे पतिके सम्बन्धकी सारी बात कह दी। रात्रि होते ही वसुमित्र सांपका वेष छोड़ एक सुन्दर जवान पुरुष होकर अपनी स्त्रीके साथ आनन्दोपभोग करने लगा। उधर समुद्रदत्ता छिपकर सारी घटना

देख रही थी, उसने उसी समय पिटारी जला दी। बस, वसुमित्र सर्वदाके लिये मनुष्य बना रहा। नाथ! उसी प्रकार मैंने साधुओं-के सर्वदा विष्णु बने रहने देनेके विचारसे आग लगाई थी। यद्यपि महाराज रानीके युक्ति-युक्त उत्तरसे सन्तुष्ट नहीं हुए, उनके दिलमें रानीकी चेष्टाकी कसक रह गयी थी, किन्तु उस समय उन्होंने प्रकटमें कुछ कहना उचित नहीं समझा। अपने क्रोधको वहीं दबा दिया।

मुनिराजके साथ दुर्व्यवहार।

एक दिनकी बात है कि महाराज श्रेणिक शिकार करने वनमें चले गये उन्होंने वनमें यशोधर महामुनिको आतप योग करते देख क्रोधित होकर मुनिके ऊपर खूंखार कुत्ते छोड़ दिये। महाराजके भयङ्कर कुत्ते बड़े वेगसे मुनिराजके ऊपर दौड़ पड़े किन्तु आश्चर्य-की यह बात हुई कि भयङ्कर कुत्ते मुनिराजके पास जाकर उनके तप-प्रतापसे चुपचाप खड़े हो गये। जब महाराजने देखा कि उनके भयङ्कर कुत्ते मुनिराजके सामने जाकर बकरे बन गये तब उनके क्रोधका ठिकाना नहीं था वे क्रोधमें आकर मुनिराजके तरफको तीर निकाल अन्धाधुन्ध चलाने लगे। मगर धन्य हैं मुनिराजका प्रभाव महाराजके छोड़े हुए समस्त तीर उनके शरीरमें फूलके समान लगे। मुनिराजके तपस्याका प्रभाव वर्णनातीत है। किन्तु महाराजने तपस्वी मुनिराजके ऊपर अत्याचार कर उसी समय सातवें नरक-में जानेके लिये योग पैदा कर दिया। उस नरककी आयु तैंतीस सागरकी होती है।

महाराजका पश्चाताप।

जब महाराज श्रेणिकने मुनिराजके ऊपर अपने कुत्ते तथा तीखे बाणोंका तनिक भी असर नहीं देखा तब उनका हृदय मुनिराजके प्रति कोमल हो गया। वे अपने मनमें पश्चात्ताप करने लगे। महाराजने मुनिराजके पास जाकर अपने अपराधके लिये क्षमा माँगना शुरू किया। मुनिराजने उन्हें क्षमा प्रदान कर पवित्र जैन धर्मका उपदेश दिया। फलस्वरूप महाराज श्रेणिकने उसी समय सम्यकत्व ग्रहण कर लिया। पाठकगण, पवित्र सम्यकत्वके प्रभावसे महाराजके लिये अब प्रथम नरकके भोगनेकी आयु रह गयी जो चौरासी हजार वर्षोंकी होती है।

अन्तिम शुभ परिणाम।

अन्तमें महाराज श्रेणिकने श्री चित्रगुप्त महामुनिके पास जाकर क्षयोपशम सम्यकत्व प्राप्त किया। इसके अनन्तर उन्होंने भगवान वर्धमान स्वामीके द्वारा क्षायिक सम्यक्त्वसे शुद्ध होकर अंतिम पूज्य तीर्थंकरका सम्बन्ध स्थिर किया। पाठक, महाराज श्रेणिक तीर्थंकर होकर निर्वाण प्राप्त करेंगे। भगवान जिनेन्द्र केवल ज्ञान रूपी प्रदीपके समान हैं जिनेन्द्र देव, विद्याधर तथा चक्रवर्त्ती तक पूजते हैं उन्हीं भगवानके परम पवित्र उपदेश ग्रहण कर मनुष्य लक्ष्मी प्राप्त कर मोक्षका अधिकारी होता है। अतः ऐसे पवित्र जिन भगवानकी पूजा करना प्रत्येक उच्च मनुष्यका कर्तव्य है।

राजा पद्मरथकी कथा ।

(२०)

"जिन चरणोंमें देवराज, अरु महाराज तक नमते हैं ।
जिन चरणोंकी सेवा करके महा पतित तक तरते हैं ॥
उसी पवित्र भक्तिमें रङ्गकर जिसका मान बढ़ाते हैं ।
वही कथा नीचे लिखता हूं जो पढ़ कर सुख पाते हैं ॥

मगध देशान्तर्गत मिथिला नामक नगरीमें राजा पद्मरथ राज्य करते थे। वे परोपकारी, दयालु तथा नीति-निपुण राजनीतिज्ञ थे। एक दिनकी बात है कि राजा पद्मरथ शिकार खेलने जङ्गलमें गये। उन्होंने एक खरगोशके पीछे अपना घोड़ा दौड़ाया, किन्तु वह इतनी तेजीसे भागा कि बातकी बातमें राजाकी नजरोंसे ओझल हो गया। राजा मन मारकर रह गया, राजाका घोड़ा दौड़ता हुआ कालगुफा नामक गुफाके पास पहुंच चुका था, उसी गुफामें संयोग से सुधर्म मुनिराज तपस्या करते थे। पाठकगण, जिस प्रकार तपा हुआ लोहा जलकी बूंदोंसे शान्त हो जाता है उसी प्रकार परम शान्त तपस्वी मुनिराजके शुभदर्शनसे महाराजका हृदय गद्गद् हो गया। महाराज घोड़ेसे उतर पड़े, उन्होंने श्रद्धा-भक्तिसे मुनिराजको नमस्कार किया। मुनिराजने राजा पद्मरथको धर्मोपदेश देकर उनका मन प्रफुल्लित कर दिया। राजाने हाथ जोड़कर विनीत शब्दोंमें कहा,—"मुनिराज! आप कृपाकर बतावें कि आपके समान कोई अन्य मुनिराज इस संसारमें हैं या नहीं, अगर कोई हैं तो किस

स्थानपर हैं ?" राजाकी जिज्ञासा भरी बात सुनकर मुनिराजने कहा, —"महाराज ! मैं जिन भगवान बारहव तीर्थंकर वासुपूज्यकी चर्चा करता हूं उनके शरीरका तेज सूर्यके प्रखर तेजके समान है। उनके रोम २ से दिव्य छटा प्रकाशित हो रही है। उनके अनन्य ज्ञानके आगे संसारमें कोई उपमा मिलना असम्भव है। मैं उनके आगे नगण्य हूं। सच है ऐसे दिव्य अलौकिक पुरुषसे हमारी तुलना हो नहीं सकती। मैं उनके सामने कुछ भी नहीं हूं ? इस प्रकार मुनिराजके निस्पृह वचन सुनकर राजाके हृदयमें भगवान वासुपूज्य के दर्शनकी प्रवल इच्छा हुई। वे भगवान्के दर्शनके लिये चल पड़े। महाराजके साथमें अन्य लोग भी दर्शनार्थ चले। उसी समय धन्व-न्तरी और विश्वानुलोम नामक दो देवोंने राजाको भगवान वासु-पूज्यके पास जाते देख उनकी परीक्षा लेना शुरू किया। उसी समय देवोंने घोर उपद्रव करना प्रारम्भ किया, उनके मार्गमें काला सांप मिला। इसके बाद राज्य छत्र दण्डका भंग होता दिखलाई पड़ा। इसके उपरान्त पत्थर वर्षा शुरू हुई, अग्निकांड हो गया फिर मूस-लाधार पानी बरसना शुरू हो गया। महाराजके साथ चलने वाले अधिकांश आदमी घायल होकर अधमरेसे हो गये। मन्त्रियोंने इस यात्राको अशुभ करने वाला बताकर महाराजको वापस चलनेके लिये सलाह दी।

दृढ़ प्रतिज्ञा।

किन्तु राजा पद्मरथ अटल बने रहे। उन्होंने दृढ़ निश्चय कर लिया चाहे जो कुछ परिणाम हो मगर मैं भगवान्का पवित्र दर्शन अवश्य करूंगा। इस प्रकार विचार कर उन्होंने 'नमः श्री वासुपू-

ज्याय' कहकर भगवान वासुपूज्यके पास जानेके लिये प्रस्थान कर दिया। देवोंने महाराजकी निश्छल भक्ति देख प्रकट होकर उनकी प्रशंसा की, इसके उपरान्त उक्त देवोंने एक वहुमूल्य हार और एक योजनतक सुनायी देने वाली एक वीणा देकर अपने २ स्थान पर प्रस्थान किया। सच है:—

जिसके शुद्ध हृदयमें वहती जिन प्रभुकी भक्ती-गंगा।
सफल मनोरथ वह होता है इसमें नहीं जरा-शंका॥

दीक्षा धारण।

जिस समय राजा पद्मरथ भगवान वासुपूज्यके पवित्र समवशरणमें पहुंचे उस समय उन्होंने क्या देखा कि भगवान आठप्रतिहार्योंसे युक्त हैं, अनेक देव, विद्याधर, राजे, महाराजे भगवान्‌की स्तुति कर रहे हैं। भगवान अपने केवल ज्ञान द्वारा संसारके समस्त तत्वोंको जानते हुए पवित्र धर्मोपदेश दे रहे हैं। जन्म-जन्मान्तरोंके मिथ्या भावोंको नाश करने वाले भगवान वासुपूज्यके पवित्र दर्शन कर वे गद्‌गद्‌ हो गये। राजाने भगवान्‌की स्तुतिकर पूजा की इसके वाद भगवान्‌ने उन्हें पवित्र धर्मोपदेश दिये, जिन्हें सुनकर वे दीक्षा लेकर तपस्वी वन गये। तपस्या द्वारा राजा अवधि तथा मनः पर्यय-ज्ञान प्राप्त कर भगवान् वासुपूज्यके गणधर वन गये।

श्रेष्ठ पुरुषको चाहिये कि वे भगवान जिनेश्वरकी सच्ची भक्ती कर मिथ्या भावोंको छोड़ स्वर्ग मोक्षका अधिकारी वनें। जिस प्रकार राजा पद्मरथने भगवान जिनेन्द्रकी सच्ची उपासना कर भक्तराज का आसन पाया उसी प्रकार अन्य लोगोंको करना चाहिये। भगवान जिनेन्द्रकी भक्ति करनेसे कितना फल मिलता है, यह वर्णनातीत

है। सच है उसीके द्वारा संसारके वैभव स्वर्ग मोक्ष तथा अन्य मनोरथ प्राप्त होते हैं। भक्तिके द्वारा ही केवल-ज्ञान द्वारा संसारका कल्याण होता है। इस प्रकार भगवान वासुपूज्य संसारी जीवोंके कल्याणका भाव प्रदान करें तथा कर्मोके कारण घोर कष्ट सहने-वालोंका उद्धार करें यही मेरी (लेखक) विनम्र प्रार्थना है।

पंच नमस्कार मन्त्रकी महिमाकी कथा।

(२१)

"मोक्ष सुखोंको देने वाले, श्री अरहंत कहाते हैं।
उपाध्याय आचार्य साधुओंको निजशीश झुकाते हैं॥
जपकर नमस्कार मंत्रोंको, स्वर्ग-मोक्षका सुख पाया।
सेठ सुदर्शनकी गाथाको सुन कर करलो शुचि काया॥

अंगदेशमें चम्पानगरीका राजा गजवाहन था वह अत्यन्त रूपवान तथा बड़ा बहादुर था। उसने अपने समस्त शत्रुओंको पराजित कर अपना राज्य निष्कंटक बना लिया था। उसी राजाकी राजधानीमें एक वृषभदत्त नामक सेठ रहता था, उसकी अर्हद्दासी नामक स्त्री थी। वह शीलवती थी, उसपर सेठ अपना हार्दिक प्यार रखता था। इस प्रकार दोनोंका दाम्पत्य जीवन आनन्दमय व्यतीत होता था।

ग्वालेकी दयाभक्ति।

पाठक! उसी सेठके यहां एक ग्वाला नौकर था। एक दिन

ऐसी घटना घटी जिससे ग्वालेके जीवनमें महान परिवर्तन कर दिया। बात यों हुई कि ग्वाला जंगलसे अपने घर आ रहा था, रास्तेमें उसने एक मुनिराजको एक शिलापर बैठकर ध्यान लगाये देखा। उस समय संध्या हो रही थी, जाड़ेका समय था। ग्वालेने अपने मनमें विचार किया कि इस जाड़ेमें मुनिराज बिना वस्त्रके इस शिलापर कैसे रात काटेंगे। दया-भावसे प्रेरित होकर वह अपने घर गया और उसने अपनी स्त्रीसे मुनिराजके सम्बन्धमें सारी बात कह सुनायी। पीछे ग्वाला मुनिराजके पास पहुंचा उसने देखा कि मुनिराजका सारा शरीर ओससे भींग गया है। किन्तु मुनिराज अविचल-भावसे उसी शिलापर बैठे ध्यानमें लीन हैं। उसने भक्ति भावसे प्रेरित होकर उनके शरीरके ओस बिन्दुओंको पोंछ डाला। इस प्रकार ग्वालेने समूची रात मुनिराजकी सेवामें बिताई। प्रातः काल होते ही मुनिराजका ध्यान टूटा। उन्होंने ग्वालेको भक्ति-भाव से सेवामें संलग्न देख उसे पवित्र पंच नमस्कार-मन्त्र दिया जिसे प्राप्त कर मनुष्य स्वर्ग-मोक्ष सदृश दुर्लभ रत्न पाते हैं। मुनिराज भी मंत्रका उच्चारण करते हुए आकाशमें विहार करने लगे।

ग्वाला का क्या हुआ।

इधर ग्वाला पंचनमस्कार मंत्र को रट लगाने लगा। वह उठते बैठते, सोते-जागते उसी मंत्रका उच्चारण करता। वह किसी कार्यके प्रारम्भ करनेके प्रथम उसी पवित्र मन्त्रकी आराधना करता। इस प्रकार उक्त मन्त्र उसके राम रोममें व्याप्त हो गया। एक दिन सेठ वृषभदत्तने ग्वालेको मंत्र कहते सुन लिया सेठने मंत्र प्राप्त करनेके सम्बन्धमें उससे पूछा। ग्वालेने मन्त्र पानेके सम्बन्धमें सेठसे मुनि-

राजकी सब बातें कह दीं। बृषभदत्तने प्रसन्न होकर कहा,—"तेरा जीवन धन्य है। तेरा अहो भाग्य जो तूने मुनिराजके दर्शन किये जिनकी पूजा त्रिभुवन भरमें हो रही है। सच है: -

"जो सच्चे मानव हैं जगमें, धर्म-भाव प्रगटाते हैं।
अपने धर्म-प्रेम परिचयमें, पूर्णानन्द जताते हैं॥

ग्वाला सेठका पुत्र हुआ।

एक दिन ऐसी घटना घटी कि उस ग्वाले को मवेशियां नदी पार करने लगी। वह भी पंच नमस्कार मंत्रका स्मर्ण कर मवेशियोंके पीछे नदीमें कूद पड़ा। बरसातके कारण, नदी भरपूर भरी हुई थी। दुर्भाग्यसे कहिये या संयोगसे, नदीमें कूदते ही एक नोकीली लकड़ी उसके पेटमें घुस गयी जिससे उसका पेट फट गया और उसका प्रणान्त हो गया। पवित्र मन्त्रके प्रभावसे वह स्वर्ग जाता किन्तु उसने अपने मनमें सेठ बृषभदत्तके पुत्र होनेकी इच्छा की थी फलस्वरूप वह ग्वाला मरनेके बाद उक्त सेठका पुत्र हुआ। उसने उच्च कामना नहीं की थी अतः सेठका पुत्र हुआ। उसका नाम सुदर्शन रक्खा गया। सुदर्शनके जन्म लेते ही सेठ बृषभदत्तकी दिन दूनी, रात्रि चौगुनी उन्नति हुई। उसकी इज्जत, धन वैभव तथा सम्पत्ति बेहद बढ़ गयी। सच है :—

"पुण्यवान जो नर होते हैं, यश वैभव-सुख पाते हैं।
जहां जहां पर वे जाते हैं—सुख से समय बिताते हैं॥"

सुदर्शनका व्याह।

कुछ दिनोंके बाद, सुदर्शन सयाना हो चला उसी नगरीमें साग-

रदत्त सेठ रहता था। उसकी स्त्रीका नाम सागरसेना था। मनोरमा उसकी लड़की थी वह सुन्दरी थी। उसीके साथ सुदर्शनका विवाह हुआ अब, सुदर्शनने गृहस्थ जीवनमें प्रवेश किया। युगल-जोड़ी आनन्दसे जीवन विताने लगी।

रानीका दुराचार

पाठक! एक दिन सेठ वृषभदत्त समाधिगुप्त महामुनिके दर्शनके लिये गया। उसपर मुनिराजके धर्मोपदेशका इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि वह समस्त धन-वैभव सुख छोड़ दीक्षा लेकर तपस्वी हो गया। अब, सुदर्शनके ऊपर गृह, परिवार, गृहस्थीका समूचा भार आ पड़ा, सुदर्शनकी ख्याति फैलने लगी, राज-दरबार सर्व साधारण तक उसे चाहने लगा। सुदर्शन भी संसारिक कामोंमें कुशल रहा, साथ ही साथ उसने जिन-भगवानकी भक्तिमें अपना अधिकांश समय देना शुरू किया। तबसे उनकी गणना धार्मिक पुरुषोंमें होने लगी। सभी उसके सदाचार, श्रावकव्रत-विधान तथा दान-पुण्य कर्मसे उसकी प्रशंसा करने लगे। वह भी ब्रह्मचर्य व्रत धारणकर सदाचार पूर्ण जीवन विताता। इस प्रकार राज-दरबारमें उसकी पूछ ताछ होने लगी। मगधाधिपति उसे खूब मानते। एकदिन महाराज सुदर्शनके साथ उपवनमें टहल रहे थे। महाराज गजबाहनकी रानी भी साथमें थी। रानी सेठ सुदर्शनके रूप-सौन्दर्य देखकर उसपर मोहित हो गयी। उसने अपनी एक दासीसे सुदर्शनके सम्बन्धमें पूछ ताछ की। दासीने हाथ जोड़कर कहा,—"महारानी, वे आपकी नगरीके प्रधान सेठके पुत्र हैं। इनका नाम सुदर्शन है।" रानीने कहा,—"तब तो कितने आनन्दकी बात है कि ये राज्य-रत्न हैं। लेकिन, इनका

सौन्दर्य अपूर्व है। मैंने आज तक, इनके समान सुन्दर पुरुष नहीं देखा है, अहा ! इनको देखते ही मेरा मन आकर्षित हो जाता है। मुझे भ्रम है कि-स्वर्गके देव इतने सुन्दर होते हैं या नहीं, अच्छा, तुम तो कहो कि सेठ कैसे लगते हैं ? क्या तुमने इनके समान किसी पुरुषको इतना सुन्दर देखा है।" दासीने ठकुरसुहाती बात कही,—"महारानीजी ! आपका अनुमान ठीक है। पृथ्वी क्या त्रिभुवन भर में इनके समान सुन्दर रोबीला जवान मिलनेका नहीं है। ये सच-मुचमें सुन्दर पुरुषोंके सरताज हैं। रानीने दासीको अपने मनके अनुकूल पाकर कहा,—"अच्छा, क्या तू मेरा एक कार्य कर सकती है। सच जानो, मैंने तुझे अपनी अन्तरङ्ग दासी समझकर कहा है, देखना यह बात किसीपर प्रगट न हो। दासीने कहा—मैं तो आप की दासी हूं, कहिये क्या आज्ञा होती है मैं पूरा करनेके लिये तैयार हूं।"

रानीने कहा, तू कह कि मैं कार्य कर दूंगी, तब मैं कहूंगी। दासीने चौंककर कहा, "महारानीजी, आप विश्वास रक्खें कि मैं अपने बसकी बात पूर्ण करनेको प्रस्तुत हूं मुझसे जहां तक बन पड़ेगा मैं आज्ञा-पालन करनेसे मुंह न मोड़ूंगी। उस समय रानी अपनी भावी आशापर फूली नहीं समायी। वह भविष्यकी सुन्दर-कल्पना करने लगी, इतनेमें रानी व्यग्रता प्रगट करती हुई कहने लगी, "देखो, मैं इस नव-जवानपर तन मनसे मोहित हूं। मैंने जबसे इसे देखा है तबसे यह मेरी नजरोंमें समा गया है, मेरा हृदय इस-पर कुर्बान हो रहा है। बस, तू ऐसा प्रयत्न कर कि यह सुन्दर सेठ मेरे पास आवे। नहीं तो मेरा जीना असम्भव है देखना, यह गुप्त

बात तेरे सिवाय कोई दूसरा न जाने नहीं तो......! कहकर रानी चुप हो गयी। बस, दासी फूलकर कुप्पा हो गयी। उसने अपने मनमें विचार किया कि मेरा भाग्य भी पत्थर हो जायेगा। मैं माला-माल हो जाऊंगी। रानी तो काममें पीड़ित हो रही है यह मेरे चंगु-लमें है ही। आप इतनीसी बातके लिये क्यों व्यर्थमें परेशान हो रही हैं मैं बातकी बातमें आपके दिलके अरमान पूर्ण करती हूं। संसारमें कौन ऐसी चीज है जो आपको न मिल सके। आप विश्वास रखो, घबड़ायें नहीं, आपके मनकी मुराद पूर्ण होगी और जल्दी पूर्ण होगी।" पाठक गण! किसीने ठीक कहा है:—

जो असभ्य होते हैं वे क्या २ न कर्म कर जाते हैं।
अपने दुष्कर्मोंसे देखो कैसे दुःख उठाते हैं॥

तपस्वी सुदर्शन

पाठक! इधर सेठ सुदर्शनने श्रावक-व्रत ग्रहण किये थे। वह संसारमें रहते हुये भी उससे स्वतंत्र होना चाहता था इसलिये वह कभी २ ध्यानमें लीन रहता था। वह अष्टमी और चतुर्दशी तिथि-योंमें अक्सर श्मशान-भूमिमें जाया करता था। वह रात्रिके समय श्मशानमें जाता और ध्यानमें लीन रहता। इधर रानीकी दासी तो सुदर्शनको एकान्तमें पानेका मौका ढूंढ़ही रही थी, उसे मौका मिल गया, किन्तु, सबसे पहिले उसने पहरेदारोंके ऊपर अपना रोब गालिब करनेके लिये एक षड्यन्त्र रचा, जो यों है:—उसने कुम्हारसे मनुष्यके आकारके समान मिट्टीकी मूर्ति बनवाई। एक दिन ऐसी घटना घटी वह मिट्टीकी मूर्ति महलमें ले जाने लगी, पहरे-

दारोंने उसे महलमें नहीं जाने दिया। दासी हिम्मत कर आगे बढ़ी, किन्तु पहरेदारोंने रोक लिया। इसपर उसने गुस्सेमें आकर समूची मूर्ति जमीनपर पटक दी। मिट्टीकी मूर्ति जमीनपर गिरते ही चूर-चूर हो गयी। अब, दासीने क्रोध दिखलाकर कड़े शब्दोंमें कहा,—"दुष्टो! क्या तुम्हें नहीं मालूम है कि महारानीने नर-व्रत धारण किया है जिसमें नरके समान मिट्टीके पुतलेकी आवश्यकता थी जिसे आज मैं ले जा रही थी, किन्तु, तुम लोगोंने मूर्ति तोड़ फोड़ दी। अब, महारानीका व्रत कैसे पूर्ण होगा, वे बिना भोजन किये रहेंगी मैं अभी जाकर उनसे सारी बातें कहकर तुम्हें दण्डित कराती हूं, तुम्हारे दुष्कर्मोंका अभी बदला चुकाती हूं।" पहरेदार भय-भीत हो गये। वे दासीसे हाथ जोड़कर अपराधकी क्षमा कराने लगे। सब लोग कहने लगे, क्षमा करो, महारानीसे कहकर हमें दण्ड न दिलाओ।" दासीने कहा, "अच्छा, मैं इस बार तो क्षमा करती हूं परन्तु तुम लोगोंने अपराध तो बड़ा भारी किया है मगर तुम्हारी हालत देखकर मुझे दया आती है। किन्तु अगर तुमने फिर गल्ती की, तो मुझे कोई चीज या महारानीसे नर-व्रतकी पूर्तिके लिये अगर कोई आदमीकी ही आवश्यकता पड़ी तब तुम लोगोंने रुकावट डाली तब क्या होगा? पहरेदारोंने हाथ जोड़ते हुए कहा,—"इस बार तो क्षमा प्रदान करा दो। दुबारा हम लोग तुम्हारे काममें दखल नहीं दगे। तुम आने जानेमें स्वतन्त्र हो।" दासीने डांटकर कहा, अच्छा, इस बार तो मैं माफ करे देती हूं किन्तु आइन्देसे ख्याल रखना इस प्रकारकी गुस्ताखी कर हमारे कार्यमें बाधा न डालना, मैं रानीका व्रत पूरा करनेके लिये मिट्टीके पुतलेके लिये जा रही हूं या जैसी

आवश्यकता होगी करूंगी। ऐसा कहकर वह श्मशानमें पहुंच गई वहाँ जाकर उसने देखा कि तपस्वी सुदर्शन ध्यानमें निमग्न हैं। श्मशानकी भूमि भयंकर होती है। चिताओंके जलानेसे उसकी भयङ्करता और बढ़ रही थी। उसी भयङ्कर स्थानमें तपस्वी सुदर्शन कायोत्सर्ग ध्यानमें लीन थे। बस दासीको अच्छा सुयोग मिला। वह फूली नहीं समायी, उसी समय उसने तपस्वी सुदर्शनको उठा कर रानीके महलमें पहुंचा दिया।

ब्रह्मचारी सुदर्शन।

जिस समय रानीने सेठ सुदर्शनको अपने कमरेमें पाया, वह अत्यन्त प्रसन्न हुई। उसने अपने मनमें विचार किया कि मेरी मनोकामना पूर्ण हुई, वह काम वासनासे मतवाली बन रही थी। उसने सेठ सुदर्शनसे कहा, – "प्यारे! मेरी मनोकामना पूर्ण करो। अपने प्रेमालिङ्गन द्वारा मुझे सुखी करो, देखो, तुम्हारे लिये मुझे कितनी परेशानी उठानी पड़ी अब, आनन्दसे सुख-क्रीड़ाकर जीवन सार्थक करो, मगर तपस्वी सुदर्शन टससे मस नहीं हुए। संसारमें ऐसे जितेन्द्रिय तपस्वी, आदर्श-सदाचारी ब्रह्मचारी कहां मिलेंगे। रानीकी अनेकों कुचेष्टाओंपर भी ब्रह्मचारी सुदर्शनका मन विचलित नहीं हुआ। वे जिन भगवानका स्मरण कर इस कष्टसे रक्षा पानेके लिये प्रार्थना करने लगीं। उन्होंने अपने मनमें निश्चय कर लिया कि यदि आज मेरे सदाचारकी रक्षा हो गयी तो मैं इस संसारको छोड़कर वैराग्य धारण कर लूंगा, फिर इस संसारके झमेलोंमें नहीं पड़ूंगा। इस प्रकार निश्चय कर वे ध्यानमें लीन हो

रहे। धन्य हो तपस्वी सुदर्शन तुम्हारी जितनी भी प्रशंसाकी जाय थोड़ी है। भला ऐसे समयमें कौन ऐसा ब्रह्मचारी होगा जो सुन्दरियोंके अनेकों अनुनय-विनयको यों ठुकरा दे, संसारमें मुक्त होकर ब्रह्मचर्यकी रक्षा करनेके स्थानपर सुन्दरीके बाहुपाशोंसे बच कर अपने सदाचारको रक्षा कर सकना तपस्वी सुदर्शनका ही काम है। सच है:—

कठिन कष्ट सहकर भी सज्जन सत्पथ कभी न तजते हैं।
अन्त समयतक दृढ़ व्रत रहकर सदाचार पथ गहते हैं॥

रानी अपनी लाख कोशिश करके थक गई, मगर सुदर्शनका व्रत भंग न हुआ। उसकी बुरी वासना पूरी नहीं हुई, वह लज्जित होकर तपस्वी सुदर्शनको फँसानेका यत्न करने लगी, उसने अपना शरीर नोचकर घाव कर दिये वह उसी समय हल्ला करने लगी,—"अरे दौड़ो, बचाओ, पापीके हाथोंसे। बस, बस उसका दूसरा षड्यन्त्र सफल हुआ, तपस्वी सुदर्शन महलमें ही पकड़ लिये गये। और महाराजके सामने पकड़कर पहुंचा दिये गये। पाठक देखा आपने स्त्रियोंका चरित्र! थोड़ी देर पहले बात क्या थी और अब क्या हो गयी? किसीने सत्य ही कहा है:—

दुराचारिणी नारी जगमें क्या न कर्म कर सकती है।
बुरे कर्म करनेमें कुलटा रंचक नाहिं लजाती है॥

पाठकगण! दुराचारिणी रानीने अपनी बुरी वासना पूरी होते न देख हल्ला मचाकर निर्दोषी ब्रह्मचारी तपस्वी सुदर्शनको बन्दी बना दिया। महाराजने सुदर्शनकी कथा सुनकर क्रोधमें आग-बबूला हो उन्हें फांसीकी सजा दे दी।

तपस्वी सुदर्शनकी रक्षा ।

इधर महाराजका हुक्म हुआ,—"दुष्ट पापीको मार डालो।" उधर जल्लादोंने तपस्वीको श्मशान-भूमिमें मार डालनेके लिये ले जाकर खड़ा कर दिया उधर जल्लादकी तलवार चली उधर सुदर्शनकी झुकी हुई गर्दन ज्योंको त्यों साबित रही, तलवारका वार व्यर्थ गया, सुदर्शनके गर्दनपर वह फूलके समान लगी। सभी आश्चर्य सागरमें गोता खाने लगे। उसी समय देवोंने तपस्वी सुदर्शनको जय मनाते हुए स्तुति की—तपस्वी तुम धन्य हो। आज संसारमें तुम्हारे समान कोई श्रेष्ठ जिन-भक्त नहीं। ब्रह्मचारी तुम्हारा ब्रह्मचर्य व्रत अनुपमेय है। तुम्हारा हृदय सुमेरके समान अचल है। तुमने अपने अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत द्वारा वह अलौकिक काम किया है जिसकी उपमा त्रिभुवनके इतिहासमें मिलनेकी नहीं देवोंने पुष्प वर्षा की तथा श्रद्धा-भक्तिसे उनकी पूजा की। सच है—

पुण्यवानके दुख भी सुखमें जैसे परिणत होते हैं।
सदाचार रक्षा करनेमें कभी न साहस खोते हैं॥
पुण्य कर्मकर श्रेष्ठ जनोंको धर्म धारना ही चहिये।
जिन प्रभुकी सच्ची भक्तीकर पुण्य पंथ गहना चहिये॥

पाठकगण! पुण्य कामोंमें निम्नलिखित बातें हैं:—जिन भगवानकी पूजा, सत्पात्रोंको दान, ब्रह्मचर्य व्रत पालन, अणुव्रताचार दुःखियों, असहाय पीड़ितोंकी सेवा, विद्यादान, विद्यालय स्थापित [illegible]ना, उसमें सहयोग देकर विद्यार्थियोंको निःशुल्क विद्या दान [illegible] पुण्य कहलाते हैं। उधर किसीने महाराजके कानोंतक

तपस्वी सुदर्शनके प्रभावका वर्णन कह सुनाया। महाराज अविलम्ब तपस्वीके पास पहुंचे। उन्होंने अपने अपराधोंकी क्षमा प्रार्थना की।

संसार त्यागी तपस्वी सुदर्शन।

इस घटनासे सुदर्शनके अन्तस्थलमें अत्यन्त ही घृणाका भाव उत्पन्न हो गया। वे उसी समय अपने पुत्र सुकान्तवाहनपर घर-का भार सौंप संसार पूज्य विमल वाहन महामुनिके पास जाकर दीक्षित हो गये। मुनिराज सुदर्शनने अपने कठिन तप द्वारा अपने घातिया कर्मोंका नाश कर केवल ज्ञान प्राप्त किया। अन्तमें उन्होंने सबको परोपकार कल्याण मार्ग दिखलाते हुये अनन्त सुखधाम मोक्षवासकर परमानन्द प्राप्त किया। अतः पंच नमस्कार मंत्रकी अपूर्व महिमाका प्रकरण सुनकर प्रत्येक उत्तम पुरुषोंका कर्त्तव्य है कि वे श्रद्धा-भक्तिसे परम पवित्र मन्त्रकी आराधना करें। भगवान जिनचन्द्र, संसार रूपी मनमें सदा अपनी छटा दिखलाते रहें जो श्रुति ज्ञानके सिन्धु हैं। अनेक मुनि देव, विद्याधर चक्रवर्त्ती जिन की पूजा करते हैं जिनकी केवल ज्ञान रूपी क्रान्ति संसारके पाप रूपी तमको नाश करनेमें चन्द्रमाके समान प्रकाशित रहती है वही हमारी (लेखक) मनोकामना पूर्ण करे ऐसो हार्दिक प्रार्थना है।

चन्द्ररूप बनकर श्री भगवन हृदय कामना सफल करो।
नित २ यही प्रार्थना भगवन ! करते हैं सब विघ्न हरो॥
केवल ज्ञान तुम्हारा जगका ज्ञान प्रकाशित करता है।
हे प्रभु ! सच्चा नाम तुम्हारा जग पापोंको हरता है॥

यममुनि की कथा।

(२२)

"पाठक ! श्री यम मुनि कैसे थे, अल्प बुद्धिके ज्ञानी।
कैसे मुक्ति नारि वे पाये, पढ़लो वही कहानी॥
गुरू देवके चरणोंमें मैं नमस्कार करता हूं।
जो सुख को देनेवाली है, ऐसा ही लिखता हूं॥

उड्र देशान्तर्गत धर्म नामक नगरमें राजायम राज्य करते थे। उनकी रानीका नाम धनवती था। उसके पुत्रका नाम था गर्दभ और कन्याका नाम था कोणिका, वह अत्यन्त सुन्दरी थी। राजा यमके राजमहलमें अन्य रानियां थीं जिनके पांच सौ पुत्र थे। वे सबके सब वैरागी थे, संसारी मायामें उनका तनिक मन नहीं लगता था। राजा यमके यहां दीर्घ मंत्री था। इस प्रकार उनका समय सुख शांतिसे बीतता था।

कोणिका का भाग्य।

एक दिन एक राज-ज्योतिषीने कोणिका की भाग्य गणना कर बताया कि यह कन्या जिससे व्याही जायगी वह समस्त संसारका सम्राट् होगा। राजा यमने कन्याके भाग्यकी बात सुनकर उसे यत्नसे रखना शुरू किया जिसमें कोई छोटे-मोटे बलवान राजा न देख ले।

राजा मुनि संघसे पराजित हुआ।

उसी समय श्री सुधर्माचार्यका संघ वहां आ गया, जिसमें

पांचसौ मुनि थे। वे संसारके हित-साधनार्थ एक स्थानसे दूसरे स्थान पर भ्रमण कर रहे थे। नगरके समस्त निवासी मुनि-संघके शुभागमनका समाचार सुन उनकी पूजा करने तथा धर्मोपदेश सुनने चले। राजा यमको अपनी विद्वताका घमण्ड था। वह भी मुनियोंको निन्दा करता हुआ वहां जा पहुंचा। किन्तु, उसके हृदयमें अभिमानके भाव उदित होनेके कारण, उसके बुरे कर्मके उदय होनेसे वह महामूर्ख बन गया। उसकी सारी विद्वता, बुद्धिकी चमत्कारका लोप हो गया। अतः राजा यम उसी समय मूर्खाधिराज बन गये। सच है:—

"उत्तम जन ज्ञानी बननेसे, ज्ञान गर्व नहिं करते हैं।
ज्ञान-रत्नको पाकर वे ही, सदा नम्रता धरते हैं॥
जो निजबल, ऐश्वर्य, जाति तप ऋद्धि योग पर इतराते।
निश्चय जानो गर्व-दुःखसे वे ही महा दुःख पाते॥
अतः श्रेयके इच्छुकको अभिमान नहीं करना चहिये।
गर्व दुःख की महाखान है, उससे दूर सदा रहिये॥

उसी समय राजायम दन्त रहित हाथीके समान निरथक हो गये। अब उन्हें होश आया। उनका सारा मिथ्याभिमान दूर हो गया। उन्होंने उसी समय भगवानके पवित्र चरणोंमें नमस्कार कर धर्मोपदेश सुना। पाठक! धर्मोपदेश सुननेसे हृदय की कथा दूर होकर शांति मिलती है। अतः राजाका हृदय अभिमान रहित हो-गया।

राजाका वैराग्य धारण।

धर्मोपदेश सुननेका यह असर हुआ कि राजा यमके हृदयमें

संसारके भोग-विलाससे पूर्ण रूपेण वैराग्य उदय हो गया। राजाने उसी समय अपने पांचसौ वैरागी पुत्रोंके साथ दीक्षा ग्रहण कर ली। राज्य-शासन भार गर्दभ नामक पुत्रके ऊपर पड़ा। राजा यम मूर्ख बने रहे, उन्हें पंच नमस्कार मंत्रका शुद्ध उच्चारण तक नहीं आया जब कि उनके पांचसौ लड़के शास्त्राभ्यास द्वारा पूर्ण विद्वान् बन गये। इससे यम मुनिके हृदयमें बहुत दुःख हुआ उन्होंने गुरुदेवकी आज्ञा लेकर तीर्थ करनेके लिये प्रस्थान कर दिया। उन्हें मार्गमें एक रथ मिला जिसमें गदहे जुते हुए थे। उस पर एक आदमी बैठा हुआ पुरुष यममुनिको कष्ट दे रहा था। मुनिराजने ज्ञानके क्षयोपशम हो जानेसे निम्नलिखित पद्य कहाः—

कट्टसि पुणणिक्खेवसिरे गद्दहा जवंपेच्छसि खादिदुमिति।

अर्थात्—अरे गदहे कष्ट उठानेके बाद ही तुम्हें खानेको मिलेगा यममुनि आगे चले तो क्या देखते हैं कि एक स्थानपर कुछ लड़के खेल खेल रहे हैं उसी समय कोणिका भी किसी तरह चली आयी। कोणिका को देखकर सब लड़के भय भीत हो गये। तब मुनिने आत्माके प्रति निम्न गाथा की रचना की :—

"आणणत्थ किं पलोवह तुम्हे पत्थाण बुद्धि या छिद्दे अच्छई कोणि आ इति।"

बालको! तुम दूसरी ओर क्या देख रहे हो, तुम्हारी बुद्धि पत्थरके समान है उसे छेदनेवाली कोणिका मौजूद है। इसी प्रकार एक दिन मुनिराजने एक मेंढकको कमल पत्रको ओटमें छिपते हुए सर्प को ओर आते देखा उसी समय उन्होंने कहाः—

'अम्हादोत्थि भयं दीहादो दीसदे भयं तुम्हेति।

मुझे अपने प्राणों का तनिक भी भय नहीं है, डर तो तुम्हें ही है।

पुत्रका प्रकोप।

इस प्रकार यम महामुनि उपरोक्त तीनों पाठका अध्ययन करते थे, उन्हें इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं आता था। तीर्थ यात्रा करते हुए वे धर्मपुरमें जा पहुंचे। वे नगरके बाहर बगीचेमें ठहर गये। उस बगीचेमें, यम महामुनि अपने कायोत्सर्ग ध्यानमें लीन हो गये। जिस समय, यम महामुनिके आनेका समाचार उनके पुत्र राजा गर्दभ तथा उसके मन्त्री दीर्घने सुना तब उसके दिलमें पाप हुआ कि वे (मुनि) हमारा राज्य वापस लेने आये हैं। दोनोंने मुनिराजको मार डालनेके विचारसे आधी रात्रि को प्रस्थान किया। दोनो वहां पहुंच गये जहां यममुनि ध्यानमें लीन थे। दोनोंने मुनिके ऊपर अपनी तलवार खींच ली। किसीने सच ही कहा है :—

"जान लो पाठक, जगतमें राज्य वह धिक्कार है।
मूर्खता है नृपतिकी औ समझको धिक्कार है॥
वीतरागी राज्य लेगा भतभीत जो होता जहां।
धिक्कार है उस बुद्धिको जो समझ लेती है यहां॥
त्याग करके राज्य वैभव शुभयोगका बाना लिया।
आश्चर्य उस मुनिराजपर, निज पुत्रने शंका किया॥

राजा गर्दभ तथा उसके मंत्रीने बारंबार अपनी तलवार तानी, मगर, मुनिराजकी गर्दन पर चलानेका उन्हें साहस नहीं हुआ। कई बार उन लोगोंने कुचेष्टा की मगर वे हर बार पस्त-हिम्मत

रहे। इसी समय, यममुनिने अपनी पहली गाथाका परायण किया, उसे सुन कर राजागर्दभ डर गया। वह सोचने लगा—ज्ञात होता है कि मुनिराजने हमें देख लिया। मुनिराजने उसी समय अपनी दूसरी गाथा कही। अब, गर्दभको निश्चय हो गया कि ये हमारा राज्य लेने नहीं आये हैं बल्कि अपनी कन्या कोणिकाको प्यार जताने आये हैं। मुनिराजकी तीसरी गाथा सुनकर उसने अपने मनमें निश्चय किया कि मेरा मन्त्री ही मेरी जानका दुश्मन है। मेरे पूज्य पिता तो मुझे सतर्क करने आये हैं। वह हाय २ करने लगा। इसके बाद उसने अपने पूज्य पिता यम महामुनिसे धर्मोपदेश सुन कर श्रावक व्रत ग्रहण कर लिया।

अंतिम परिणाम।

यमधर मुनिराजने अपनी कठिन तपस्याके बलसे सातों ऋद्धियां प्राप्त कर लीं। पाठक गण! जब अल्प बुद्धिवाले यमधर महामुनिने उन्नति की चरम सीमाको पार कर दिया तब यदि—अन्य श्रेष्ठ लोग श्रद्धा-भक्तिसे सम्यक-ज्ञानकी सतत आराधना करें तो ऐसी कौनसी अलभ्य वस्तु है जिसकी प्राप्ति न हो पाठक गण! आप लोग भी ख्याल करें कि यमधर महामुनिने अल्प-ज्ञानी होकर जब सातों ऋद्धियोंको प्राप्त कर लिया तब आप लोगोंको भी उचित है कि परम पवित्र सम्यग्ज्ञानको पानेका उपाय करें जिससे स्वर्ग-मोक्ष सुखका साधन प्राप्त हो।

दृढ़सूर्य की कथा

(२३)

"पाठक, केवल ज्ञान-मार्गसे, अखिल तत्व जाने जाते।
जो है स्वर्ग-मोक्ष सुख दाता, जिसे प्राप्त कर सुख पाते॥
श्री जिन-प्रभुको नमस्कार कर, लिखता सूर्य कहानी।
ज्ञान प्रभाव गया स्वर्गोंको हुआ देव दुर्लभ प्राणी॥"

हारकी चोरी

किसी समय, उज्जयिनी नगरीमें राजा धनपाल राज्य करते थे। वे बड़े विख्यात राजा थे। धनमती उनकी रानी थी। एक दिन रानी अपनी दासीके साथ उपवनमें बसन्तकी बहार लूटने चली गयी। उसी समय वहांकी नामी वेश्या बसन्तसेना भी वहां मौजूद थी। उक्त वेश्याने रानीके गलेमें सुन्दर जड़ाऊ बेशकीमती रत्नोंका हार देखा। उसी समय, उसने प्रण कर लिया कि इस हारके बिना मेरा जिन्दा रहना असम्भव है। वेश्या दुःखी होकर घर चली आयी वह मन मारकर कुसमय पलंगपर सो रही। उसका प्रेमी दृढ़सूर्य नामक चोर था। दृढ़सूर्यने अपनी प्रेमिकाको उदास देखकर कहा- "प्रिये! आज तुम उदास क्यों हो? हाय, तुम्हें उदास देखकर मेरा हृदय टुकड़ा २ हुआ जाता है, बोलो, तुम्हें क्या दुःख है? मैं दूर करनेके लिये तैयार हूं।" वेश्या तो अपने यारोंसे इसी प्रकारका वेष बनाकर ठगती हैं। उनके चोचले विचित्र होते हैं। बसन्तसेनाने कहा, "यदि तुम मुझे प्यार करते हो तो मैं रानीके गलेका जड़ाऊ

हार चाहती हूं। तुम निश्चय जानो, उसके बिना में जिन्दा नहीं रह सकती और मैं तभी जानूंगी कि तुम मुझे सच्चा प्यार करते हो, अन्यथा तुम्हारे साथ प्रेम रखनेका कोई मतलब नहीं।" दृढ़चोर बड़ा पशो-पेशमें पड़ा। एक तरफ वसन्तसेनाका प्रेम कह रहा था कि तुम जैसे हो हार ले आओ, उधर रानीके गलेसे हार चुराना असम्भव था। फिर भी उसने वेश्याके प्रेममें फंसकर हार चुरानेका दृढ़ निश्चय कर लिया।

चोरीमें फांसीकी सजा

दृढ़चोरने ज्योंही महलमें जाकर रानीके गलेसे हार निकाल कर प्रस्थान करना चाहा, त्यों ही पहरेदारोंकी निगाह उसपर पड़ गई। रत्न जड़ित हारकी ज्योति उसके हाथोंमें कहां छिपती। पहरेदारोंने दृढ़सूर्यको पकड़कर बांध दिया। वह महाराजके सामने पेश किया गया, चोरीकेअपराधमें उसे प्राणदण्डकी सजा मिली। जल्लादोंने दृढ़सूर्यको फांसीकी तख्तीपर लटका दिया।

दयालु धनदत्त

उसी राहसे जिन-भक्त सेठ धनदत्त जिन-मन्दिरमें दर्शनार्थ जा रहे थे। दृढ़सूर्यने उन्हें दयालु जानकर गिड़गिड़ाकर कहा, "दयालु मैं प्यासा हूं, क्या ही अच्छा होता कि आप मुझे दो घूंट पानी पिलानेकी दया दिखाते। आपको परोपकारी दयालु समझकर मैंने कहा है।" सेठने कहा,—'भाई, मैं तुम्हें पानी पिला देता किन्तु, असमञ्जसमें पड़ा हूं। मैंने बारह वर्षकी कठिन तपस्यासे एक विद्या सीखी है, कहीं ऐसा न हो कि मैं तुम्हारे लिये जल लाने जाकर

अपनी विद्यासे हाथ धोऊं जिसे कितने परिश्रमसे पाया है। उस समय मेरा श्रम व्यर्थ जायगा और साथ ही मुझे कितनी क्षति उठानी पड़ेगी। हां, ऐसा हो सकता है कि मैं जलके लिये जाता हूं, तब तक तुम मेरी विद्याको स्मर्ण रखना, मेरे आनेपर उसे वापस कर देना।" सेठने दृढ़सूर्यको पंच नमस्कारका पवित्र मन्त्र देकर जल लानेके लिये चला गया। इधर दृढ़सूर्य पंच नमस्कारका मन्त्र जपने लगा। मन्त्र जपते २ उसका प्राण पखेरू निकल गया। इतने में सेठ जल ले आया, उस समय तो दृढ़सूर्य मरकर सौधर्म स्वर्ग का देव हुआ पंच नमस्कारकी ऐसी महिमा है।

सेठपर राजाका कोप

'होम करते हाथ जला' की उक्ति कितनी सत्य है। कहां तो दयालु धर्मात्मा सेठ धनदत्तने पुण्य कार्य किया कहां किसी दुष्टने "देखि न सकहिं पराइ विभूती, सठ दुर्जनकी सहज प्रकृतिके अनुसार राजाके पास जाकर यह शिकायत की—महाराज, मैंने अपनी आँखों देखा है कि सेठ धनदत्तने, फांसी दिये जाने वाले दृढ़सूर्य चोरसे बातें की है अतः उसके घरमें चोरीका माल अवश्य पाया जायगा। नहीं तो उसे क्या आवश्यकता थी मरते हुए चोरसे बात करने की।" सच है, राजाके आंखें नहीं होती, कान होते हैं। बस क्या था, उसी समय राजाने सेठ धनदत्तको पकड़वा लेनेकी आज्ञा दी। टुकड़खोर, दयालु धर्मवीर सेठको पकड़वानेके लिये दौड़ पड़े।

सौधर्मेन्द्रकी कृपा ।

उसी समय दृढ़ सूर्यका जीव जो देव हुआ था अपने अवधि ज्ञान से परोपकारी धनदत्तके ऊपर अपने कारण आई हुई विपत्ति जानकर वह द्वारपालके वेषमें सेठके द्वारका पहरेदार बन गया। उसी समय राजाके सिपाही पहुंचे, देवने उन्हें रोका, इसपर सिपाही जबर्दस्ती करनेपर आमादा हो गये तब देवने उन्हें मार-पीटकर भगा दिया। भगे हुए सिपाही राजाके पास जाकर रोने लगे। राजाने क्रोधमें आकर सेठको पकड़वानेके लिये अपने बड़े २ बलवान योद्धा भेजे मगर देवने उन्हें मार-पीटकर धराशायी कर दिया। राजा अत्यन्त क्रोधित हुआ, और अपनी विशाल सेना लेकर सेठके घर पर धावा बोल दिया। बातकी बातमें सेठका घर चारों ओरसे घेर लिया गया। मगर उस पराक्रमी देवने राजाकी विशाल सेनाको छिन्न भिन्न कर दिया, उसकी सेना भाग गई। राजा भी हटकर भागने लगा, इतनेमें देवने कड़क कर कहा—"कहाँ भागे जा रहे हो, मैं आपको यों भागने नहीं दूंगा। आपकी रक्षा तभी होगी जब धनदत्त आपको क्षमा कर दें। अतः उसीको शरणमें जाकर उससे क्षमा दान मांगिये।" राजाने उसी समय जिन मन्दिरमें जाकर सेठसे कहा,—"क्षमा करो, मेरी जान बचाओ।" सेठ धनदत्तने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा,—"अरे! तुम कौन हो जो हमारे आदरणीय महाराजको सता रहे हो। देवने अपनी माया वापस ले ली फिर सेठसे कहा,—'सेठजी मैं फांसीपर लटकाया जाने वाला दृढ़ सूर्य हूं जिसे आपने कृपाकर पंच नमस्कार महामन्त्र देकर सौधर्म स्वर्गका देव बनाया। मैंने अपने अवधि ज्ञानसे आपके ऊपर

कष्ट देखकर अपना कर्तव्य पालन किया है इसलिये मैं अपने उपकार कर्ताकी सहायता करनेके लिये आया हूं। मैंने ही अपने मायाजालसे सब कुछ किया है। इस प्रकार कहकर उसने सेठको रत्नजड़ित भूषण दिया, देव तो चला गया, उधर राजाने सेठका परोपकारी स्वभाव देखकर उनका सत्कार किया। सच है, धर्मात्माओंसो सभी मानते हैं। पंच नमस्कारकी महिमा वर्णनातीत है। श्रेष्ट मनुष्योंको चाहिये कि वे उक्त परम पवित्र मंत्रकी आराधना कर श्री जिन भगवानकी भक्ति-रसका पानकर अपनो बुद्धि निर्मल बनावें।

यमपाल चांडालकी कथा।

---

(२४)

"था चांडाल जातिका वह पर जैन-धर्मका प्रेमी था।
शुभ्र साधना करनेमें वह शुद्ध हृदयसे नेमी था॥
था यमपाल नाम उसका, देवोंने उसको मान दिया।
वही कथा लिखता हूं पाठक! प्रभु चरणोंमें शरण लिया॥

धर्म अधर्म।

यहां उस समयकी कथा लिखी जा रही है जिस समय काशी नगरीमें पाक शासन नामक राजा राज्य करते थे। एक समय उसके नगरमें महामारीका प्रकोप हो गया, राजाने अपने नगरमें नंदीश्वर पर्वके समय जीव-हिंसा नहीं करनेका ढिंढोरा पिटवाया।

साथ ही उनकी ऐसी आज्ञा थी कि राजाज्ञाका उल्लंघन करने वाला प्राण दण्डकी सजा पायेगा। उसी नगरीमें धर्म नामक एक सेठ पुत्र रहता था, वह बड़ा भारी अधर्मी था। वह सप्त दुर्व्यसनोंका आदी था। वह परले दर्जेका मांसाहारी थो, एक दिन भी विना माँस खाये नहीं रहता, एक दिन वह महाराजके वगीचेमें गया। भेड़ मारकर उसका कच्चा मांस खा गया। उसकी हड्डियां वहीं गड़हेमें गाड़ दी। उस भेड़के मालिक स्वयं महाराज थे! किसीने ठीक ही कहा है:—

"जो मनुष्य दुर्व्यसनी होते उसमें सदा लीन रहते।
वे प्रति दिन निज पापकर्मको नियम रूपसे हैं करते।

पापका भण्डाफोड़।

दूसरे दिन जब महाराज वगीचेमें गये, अपनी भेड़ न देखकर उन्होंने उसका पता लगाया मगर किसीने भेड़का पता नहीं दिया। अन्तमें महाराजने गुप्तचरोंको पता लगानेके लिये नियुक्त किया। एक दिन राजाका एक गुप्तचर वेप वदले राजाके वागमें टहल रहा था, उसी समय उसने एक मकानके भीतर कुछ आदमियोंकी फुस फुसाहटकी आवाज सुनी। गुप्तचरने धीरेसे मकानके पास जाकर राज मालीको अपनी स्त्रीसे यह कहते हुए पाया कि राजाके भेड़को सेठका पुत्र धर्मने मारकर खा लिया है और उसकी हड्डी वगीचेमें गाड़ दी है।" गुप्तचरने महाराजके पास जाकर भेड़के हत्यारेका पता वता दिया। महाराज क्रोधमें लाल हो गये, वे सोचने लगे कि देखो इस दुष्टको, इसने जीव-हिंसाकर राजाज्ञाका उल्लंघन किया है अत: उस दुष्टको फांसोकी सजा देनी चाहिये।" ऐसा दृढ़

निश्चय कर महाराजने राजक्क तवालको आज्ञा दी कि हत्यारे धर्म का फांसी दे दी जाय। कोतवालने यमपालको बुला भेजा।

इधर चाण्डालने किसी सर्वौषधि ऋद्ध धारी मुनिराजका धर्मोपदेश सुनकर अपने मनमें प्रण कर लिया कि मैं चतुर्दशीके दिन हिंसा नहीं करूंगा, अतः फांसी देनेकी राजाज्ञा सुनकर उसने अपनी स्त्रीसे यह कहा, "देखो! आज मैं हिंसा कर्म नहीं करूंगा, अतः राजाके आदमो आनेपर कह देना कि वे वाहर चले गये हैं।" ऐसा कहकर वह घरमें छिप रहा। थोड़ी देरके बाद, राजाके आदमो यमपालका द्वार खटखटाने लगे। चांडालकी स्त्री घरके बाहर थी उसने कहा, वे घरपर नहीं हैं, कहीं दूसरी जगह चले गये हैं।" राजाके अनुचरोंने कहा, -"देखो, अभागेको, आज ही सेठके लड़केकी फांसीमें बहुत गहने मिलेंगे, तभी वह चला गया, अभागे कहीं का।" गहने पानेके लोभमें पड़कर चांडालकी स्त्रीने इशारेसे सिपाहियोंको बता दिया कि उसका पति घरमें है कहीं बाहर नहीं गया है। इसके बाद वह पतिके नहीं रहनेपर अफसोस करने लगी।

"नारी स्वतः मयाविनि होतीं, लालचमें भी लासानी।
क्या न गजब वे ढ़ा सकती हैं पीकर लालचका पानी॥

बस, चांडालकी स्त्रीका इशारा पाते ही सिपाही उसके घरमें घुस पड़े। वे यमपालको घरके बाहर खींच लाये। यमपालने इन्कार करते हुये स्पष्ट-भावमें कहा—"आज चतुर्दशीका दिन है, मैंने आजके दिन अहिंसा-व्रत लिया है अतः मैं आज किसी प्रकार जीव-हिंसा करनेका नहीं। चाहे इसके लिये मुझे जैसा भी कष्ट सहन करना पड़े मैं तैयार हूं।"

सिपाहियोंने उसे महाराजके पास ले जाकर पेश कर दिया। महाराज पहिले ही क्रोधसे जल रहे थे, इतनेमें चांडालने उनके सामने ही राजाज्ञा नहीं माननेका सत्याग्रह कर दिखाया। वस,जले घावपर नमकका काम किया, महाराजने पापी धर्मके साथ २ यमपालको भी मौतके घाट उतारे जानेकी क्रूर आज्ञा दे दी। वस, यमपाल धर्मके साथ २-हिंसक जल जीवोंसे भरे तालावोंमें डाल दिये गये।

धर्मको जल जीवोंने उसी समय अपना भोजन वना लिया। अव वच गया यमपाल। उसके व्रतके प्रभावसे उसी समय,स्वर्गके देवताओंने तालवमेंही एक भव्य सिंहासन रखकर उसकी पूजा की. तथा उसका अभिषेक किया। महाराज तथा प्रजाने शुभ-सम्वाद सुनकर उसे सम्मानित किया। महाराजने यमपाल चांडालको इनाममें वहुत धन दिया। पाठकगण! देवताओंने एक अपवित्र चाण्डालको सम्मानित कर जैन-धर्मको महिमा बढ़ाई। तब श्रेष्ठ पुरुषोंको चाहिये कि वे भी जैन-धर्ममें सच्ची भक्ति रख स्वर्ग-मोक्षका, सुख प्राप्त करें। अतः चारों वर्ण वालोंको उचित है कि वे अपनी जातिका मिथ्याभिमान न करें। कारण, किसी भी जातिके उत्तम गुण वालों की पूजा होती है न कि रूढ़ि की। देखिये! एक चाण्डालको जिन भगवानमें भक्ति देखकर देवताओंने सम्मानित किया। उसे धन, अलंकार तथा उत्तम २ वस्त्र प्रदान किये। भगवान की कृपासे संसारके वैभव-सुख प्राप्त होते हैं उनकी पूजा करनी चाहिये।

'वे जिनेन्द्र प्रभु जो देवोंसे सदा काल पूजे जाते।
मुझे दान दें मोक्ष-रत्नका यही भावना हैं भाते॥

॥ प्रथम भाग समाप्त ॥